अध्याय 4

मुगल आक्रमण : प्रकार और प्रभाव

अरब आक्रमण

विश्व के किसी भी देश ने अरब तथा तुर्कों के आक्रमण का इतना लम्बा, दृढ़ और सफल मुकाबला नहीं किया जितना मध्य युग के हिन्दुस्तान ने। एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के अनेक देशों ने अरबों के आक्रमणों के आगे कुछ ही वर्षों में घुटने टेक दिए थे। अरबों ने सर्वप्रथम सीरिया पर आक्रमण किया, एक वर्ष (635–36 ई.) में ही राजधानी दमिश्क ने आत्मसमर्पण कर दिया। इराक का पतन भी बिना युद्ध के ही 637 ई. में हो गया। 637 ई. में केसेडिया के प्रसिद्ध युद्ध में विजय प्राप्त करने के पाँच वर्ष के भीतर ही अरबों का फारस के सम्पूर्ण विशाल साम्राज्य पर अधिकार हो गया और 642–50 ई. के दौरान उन्होंने मध्य एशिया को जीत लिया। 643 ई. में अरब सैनिक भारत की सीमा तक पहुँच गए। 711 ई. में सेनापति तारीक ने स्पेन के राजा राड्रिक को पराजित किया किन्तु सिंध ने पिचहत्तर वर्षों तक सफल प्रतिरोध किया।

भारत पर अरब आक्रमणों के कारण

1. इस्लाम ने अरबवासियों को संगठित कर उनमें मजहबी प्रचार की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न कर दी थी।अन्य देशों की तरह भारत में भी इस्लाम के प्रसार के उद्देश्य ने उन्हें आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।

2. खलीफा इस्लामी जगत का मजहबी प्रमुख ही नहीं अपितु राजनैतिक अधिकारी भी होता था। ऐसे में साम्राज्य विस्तार की भावना होना भी स्वाभाविक था।

3. अरबवासी भारत की आर्थिक समृद्धि से परिचित थे। वे यहाँ आक्रमण कर धन प्राप्त करना चाहते थे।

अरब आक्रमण – हजरत मुहम्मद की 632 ई. में मृत्यु के बाद भारत पर अरबी आक्रमणों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। खलीफा उमर के शासनकाल में 636 ई. में भारतीय प्रदेशों को लूटने के लिए मुम्बई के थाना नामक स्थान पर अरबों ने आक्रमण किया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। कालान्तर में उम्मैया वंश के शासनकाल के दौरान अब्दुल्ला के नेतृत्व में अरबी सेना ने सिंध के उस पार किरमार, सीस्तान व मकरान पर अधिकार कर लिया। खलीफा ने अब्दुल्ला को इसके आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी और अरबी आक्रमण यहीं तक सीमित रह गया।

दाहिर सेन

711 ई. में सिंध के समुद्री डाकुओं द्वारा स्थानीय बन्दरगाह देवल पर अरबी जहाज को लूट लिया गया। इस समय सिंध में दाहिर नामक ब्राह्मण राजा का शासन था। दाहिर के राज्य की सीमाएँ उत्तर में कश्मीर और पूर्व में प्रतिहारों के कन्नौज तक फैली हुई थी। पश्चिम में उसकी सीमाओं में मकरान या बलूचिस्तान का प्रदेश सम्मिलित था। दाहिर द्वारा अरबी जहाज लूटने की घटना का उपयुक्त स्पष्टीकरण नहीं दिए जाने को तात्कालिक कारण बनाकर ईराक के गवर्नर हज्जाज ने खलीफा वलीद से अनुमति प्राप्त कर सिंध पर आक्रमण के लिए सेना भेज दी। प्रारम्भिक दो अभियानों में हज्जाज के सेनापतियों उबैदुल्ला तथा बुदैल को असफलता का सामना करना पड़ा और दोनों मौत के घाट उतार दिए गये। इसके बाद हज्जाज ने अपने चचेरे भाई व दामाद सत्रह वर्षीय नवयुवक मुहम्मद बिन कासिम को भेजा। देवल पहुँचते ही उसने नगर का घेरा डालने की तैयारी की परन्तु बीच में पत्थर की सुदृढ दीवार से घिरा हुआ 120 फुट ऊँचा एक विशाल मंदिर आ गया। मंदिर का एक देशद्रोही पुरोहित अरबों से जा मिला और उसने सूचना दी कि जब तक ताबीज बंधा वह लाल झण्डा मंदिर पर लहराता रहेगा, तब तक नगर को जीता नहीं जा सकता। शीघ्र ही मुहम्मद कासिम ने 'मंजनीक' द्वारा इस ध्वज को गिरा डाला। ध्वज गिरने से नगर की रक्षा करने वाले सैनिक हतोत्साहित तथा अरब सेना उत्साहित हुई। कासिम ने नगर पर अधिकार करने के बाद 17 वर्ष से अधिक अवस्था वाले तमाम लोगों को मार डाला तथा छोटे बालक व स्त्रियों को कैद कर लिया। मंदिर की लूट में काफी सामान हाथ लगा जिसका पांचवां हिस्सा हज्जाज के पास भेज दिया गया और शेष सेना में बांट दिया। इसके बाद उसने आगे बढ़कर निरून, सेहवान और सीसम पर भी अपना अधिकार कर लिया। अंत में 20 जून 712 ई. को रावर के युद्ध में भारतीय और अरबी सेनाओं के बीच भयंकर संघर्ष हुआ। दाहिर शत्रुओं को काटता हुआ अपने साथियों सहित अरब सेना के मध्य भाग तक पहुँच गया। हाथी पर सवार दाहिर अपनी सेना के साथ डटकर युद्ध कर रहा था कि अनायास ही एक तीर उसके शरीर में आ घुसा और वह वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके बाद दाहिर की पत्नी रानी बाई ने किले की रक्षा का

प्रयत्न किया किन्तु इसमें असफल रहने पर उसने जौहर कर अपने सम्मान की रक्षा की। रावर की विजय के बाद कासिम ने ब्राह्मणवाद पर अधिकार कर लिया। यहाँ कासिम के हाथ दाहिर की दूसरी रानी लाडी और दो पुत्रियाँ सूर्यदेवी व परमलदेवी लगी। ब्राह्मणवाद के बाद कासिम ने सिंध की राजधानी आरोर (आलोर) और मुल्तान पर भी अधिकार कर लिया। मुल्तान विजय भारत में अरबों की अंतिम विजय थी। यहाँ उनको इतना धन हाथ लगा कि उन्होंने मुल्तान का नाम बदलकर 'स्वर्णनगर' रख दिया।

मुहम्मद बिन कासिम का अंत– इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार दाहिर की राजकुमारियों का रुप–लावण्य देखकर खलीफा ने उनके सामने प्रेम की याचना की। वे दोनों अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहती थी। इस कारण मौका देखकर उन्होंने खलीफा से शिकायत की कि हम आपकी शैय्या पर पैर रखने योग्य नहीं हैं, यहाँ भेजने के पहले ही कासिम ने हमारा कौमार्य भंग कर दिया। इतना सुनते ही खलीफा आगबबूला हो गया और उसने तत्काल आज्ञापत्र लिखवाया कि इसे देखते ही मुहम्मद बिन कासिम को बैल के चमड़े में जीवित सिलाई कर हमारे पास भेज दो। हुक्म की उसी समय तामील हुआ। मार्ग में तीसरे दिन कासिम मर गया और उसी अवस्था में खलीफा के पास पहुँचाया गया। खलीफा ने उन दोनों राजकुमारियों को बुलवाया और उन्हीं के सामने बैल का चमड़ा खुलवा कर कासिम का शव उन्हें दिखलाया और कहा कि खुदा के खलीफा का अपमान करने वालों को मैं इस प्रकार दण्ड देता हूँ। कासिम का मृत शरीर देखते ही राजकुमारी के मुख पर अपना मनोरथ सफल होने की प्रसन्नता छा गई, परन्तु साथ ही मंद मुस्कराइट और कटाक्ष के साथ उसने खलीफा को कहा कि 'ऐ खलीफा! कासिम ने हमारा सतीत्व नष्ट नहीं किया। उसने कभी आंख उठाकर भी हमें कुदृष्टि से नहीं देखा परन्तु उसने हमारे माता, पिता, भाई और देशबंधुओं को मारा था इसलिए उससे अपना बदला लेने के लिए हमने यह मिथ्या दोष उस पर लगाया था। वीर बालिकाओं के ये वचन सुनते ही खलीफा सन्न हो गया और उन दोनों को जिंदा जलवा दिया।'

मुहम्मद बिन कासिम के लौटने के बाद 715 ई. में सिंध में हिन्दू राजाओं का पुनर्जागरण हुआ। बालादूरी के अनुसार "अल–हिन्द के राजाओ ने अपने साम्राज्य में वापसी की और हुल्लीशाह (दाहिर का पुत्र जयसिंह) ब्राह्मणवाद लौट कर मुखिया के पद पर आसीन हो गया।" तारीख–ए–मासूमी में भी लिखा है कि मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु के कुछ समय बाद ही भारत के लोगों ने विद्रोह का शंखनाद कर अरबी शासन को उखाड़ फैंका। जयसिंह ने अपनी स्वाधीनता के लिए सिंध के सूबेदार जुनैद के साथ संघर्ष किया और लड़ता हुआ मारा गया।

भारत से सम्पर्क का अरबों पर प्रभाव – अरबों की सिंध विजय का राजनीतिक परिणाम सिर्फ यह निकला कि सिंध का सम्बन्ध कुछ समय के लिए भारत से टूट गया और वह इस्लामी साम्राज्य का हिस्सा बन गया किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से भारत ने अरबों पर विजय प्राप्त की। भारतीय दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा और ज्योतिष ने अरबों को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने कई भारतीय संस्कृत ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद करवाया जिनमें ब्रह्मगुप्त का 'ब्रह्म सिद्वान्त' तथा 'खण्ड खांड्यक' अधिक प्रसिद्ध हैं। अरब के लोगों ने अंक, दशमलव पद्धति, चिकित्सा व खगोलशास्त्र के कई मौलिक सिद्धान्त भारतीयों से सीखे और कला तथा साहित्य के क्षेत्र में भी भारतीय पद्धतियों को अपनाया। भारतीय दर्शन, साहित्य व कला की अनेक बातें अरबों के माध्यम से यूरोप के लोगों ने सीखी। इस प्रकार अरबों द्वारा भारतीय ज्ञान पश्चिमी देशों में पहुँचने में सफल रहा।

अरबों की सफलता के कारण– सिंध पर अरबों की सफलता के कई कारण थे। दाहिर के शासन में सामान्य वर्ग असंतुष्ट था। राज्य के अधिकांश भागों में असंतोष और अव्यवस्था व्याप्त थी। इस कारण अरब आक्रमण के समय उसे जनसहयोग नहीं मिल पाया। दाहिर स्वयं जनता में अप्रिय था क्योंकि उसका पिता राज्य का वास्तविक अधिकारी नहीं था। समकालीन भारतीय शासकों में आपसी तालमेल, सौहार्द तथा सहयोग की भावना नहीं थी और व्यक्तिगत स्वार्थ पनप रहे थे। सैनिक शक्ति बढ़ाने और विदेशी आक्रमण की संभावना को ध्यान में रखकर किसी भी राज्य ने अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाने की कोशिश नहीं की थी। सैनिक गतिविधियों का उत्तरदायित्व मात्र राजपूतों के कंधों तक सिमट गया था जो पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या के कारण आपस में लड़ने में लगे थे। मुहम्मद बिन कासिम की योग्यता, साहस तथा नेतृत्व शक्ति के साथ अरबों में मजहबी प्रचार के जोश, धन प्राप्ति की प्रबल इच्छा और खलीफा से मिलने वाले सैनिक सहयोग ने भी उनकी सफलता में अपना योगदान दिया।

नागभट्ट

नागभट्ट प्रथम (730–756 ई.) जालौर, अवन्ति और कन्नौज के गुर्जर–प्रतिहार वंश का संस्थापक कहा जाता है। उसने चावड़ों से भीनमाल जीतने के बाद आबू, जालौर आदि स्थानों पर भी अपना अधिकार किया। इस राज्य विस्तार के बाद उसने भीनमाल के स्थान पर जालौर को अपनी राजधानी बना लिया। मालवा में राज्य विस्तार कर उसने अवन्ति (उज्जैन) को भी अपनी राजधानी बनाया।

नागभट्ट प्रथम के समय सिन्ध की दिशा से बिलोचों तथा अरबों ने भारत पर आक्रमण किया। उसने न केवल मुस्लिम आक्रमण से पश्चिम भारत की रक्षा की अपितु उनके रौंदे हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार कर लिया। ग्वालियर प्रशस्ति में नागभट्ट प्रथम को म्लेच्छों (विदेशी आक्रमणकारी) का दमनकारक और दीनों का उद्धारक होने के कारण 'नारायण' उपाधि से विभूषित किया गया है। मुस्लिम लेखक अल बिलादुरी के विवरण से भी ज्ञात होता है कि समकालीन अरब शासक जुनैद को मालवा के विरुद्ध सफलता नहीं मिली। नौसारी अभिलेख में अरबों द्वारा पराजित राजाओं के नाम दिए गए हैं किन्तु इस सूची में नागभट्ट प्रथम का नाम न होना उपरोक्त तथ्यों को प्रमाणित करता है। अभिलेखों में उसे राम का प्रतिहार, मेघनाथ के युद्ध का अवरोधक

तथा इन्द्र के गर्व का नाश करने वाला बताया गया है। नागभट्ट प्रथम के बाद क्रमशः कुकुस्थ, देवराज व वत्सराज शासक बने।

वत्सराज की मृत्यु के बाद सुन्दरदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (795–833 ई.) गुर्जर–प्रतिहारों के सिंहासन पर बैठा। इसने अपने पराक्रम से गुर्जर–प्रतिहार वंश की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर उसे चरम पर पहुँचा दिया। वह प्रारम्भ में दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट वंश के साथ संघर्ष में पराजित हुआ किन्तु बाद में राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय की घरेलू परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए चक्रायुद्ध को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इस विजय के बाद कन्नौज गुर्जर–प्रतिहारों की नई राजधानी बन गई।

कन्नौज का शासक चक्रायुद्ध बंगाल के शासक धर्मपाल का आश्रित था। अतः धर्मपाल ने नागभट्ट से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। मुंगेर के युद्ध में नागभट्ट विजयी रहा और पराजित धर्मपाल बंगाल भाग गया। चाकसू अभिलेख के अनुसार शंकरगण ने गौड़ (बंगाल) नरेश को हराया और समस्त विश्व को जीतकर अपने स्वामी (नागभट्ट द्वितीय) को समर्पित कर दिया। मुंगेर के युद्ध में मारवाड़ के शासक कक्क तथा सामन्त शंकरगण की उपस्थिति यह सिद्ध करती है कि राजस्थान का बहुत बड़ा भाग नागभट्ट के नियन्त्रण में था। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार ''आंध्र, सिंधु, विदर्भ तथा कलिंग के नरेशों ने उसकी युवाशक्ति के समक्ष इस प्रकार समर्पण किया जिस प्रकार पतंगे अग्नि में करते हैं। उसकी महान् विशेषताओं की ख्याति सभी में फैल गई जबकि उसने आनर्त, मालव, मत्स्य, किरात, तुरुष्क तथा वत्स के पर्वतीय दुर्गों के राजाओं पर बलपूर्वक विजय प्राप्त की।'' यहाँ तुरुष्कों का समीकरण सिंध के अरबों के साथ किया गया है। दलपत विजय की रचना 'खुमानरासो' से गुहिल खुम्माण की मुसलमानों पर विजय की जानकारी मिलती है, जो नागभट्ट द्वितीय का सामन्त था। अपनी विजयों के फलस्वरूप नागभट्ट द्वितीय उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली शासक बन गया। इस उपलक्ष में उसने परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की। चन्द्रप्रभा सूरि के ग्रंथ 'प्रभावक चरित' के अनुसार नागभट्ट द्वितीय ने 833 ई. में गंगा में डूब कर आत्महत्या कर ली। संभवतः यह आत्महत्या न होकर पूर्व के कुछ शासकों द्वारा किये गये अंतिम धार्मिक कृत्य के रूप में मृत्यु को वरण करने के समान था। वह अपने वंश के सबसे योग्य व सफल शासकों में से एक था। राष्ट्रकूट व पाल वंश की तुलना में न्यून साधन होते हुए

सैन्य ठिकाने के कारण पाकिस्तान के शहर का नाम रावलपिंडी पड़ा।

तुर्क आक्रमण

आठवीं शताब्दी में होने वाले अरब आक्रमणों के बाद भारत लगभग दो शताब्दियों तक मुगल आक्रमणों से सुरक्षित रहा। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुगल आक्रमणों का सिलसिला एक बार फिर प्रारम्भ हुआ किन्तु इस बार आक्रमण अरबों के स्थान पर तुर्कों द्वारा किए गये थे। भारत पर आक्रमण करने वाला प्रथम तुर्क आक्रमणकारी गजनी का शासक सुबुक्तगीन था। 977 ई. में शासक बनने के बाद उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं का प्रसार करना प्रारम्भ किया। इस समय भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग पर शाही वंश के योग्य राजा जयपाल का शासन था। लम्बे संघर्ष के बाद धोखे व षड़यंत्र से सुबुक्तगीन विजयी रहा और उसने लमघान से पेशावर तक के भारतीय प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गई जिसके बाद उसके पुत्र इस्माइल और महमूद (गजनवी) क्रमशः गजनी के शासक बने। महमूद योग्य व महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने भारत पर कुल 17 बार आक्रमण किए जिनमें 1025 ई. में सोमनाथ मंदिर (गुजरात) पर किया गया उसका सोलहवाँ आक्रमण सर्वाधिक कुख्यात है। महमूद के आगमन की खबर सुनकर राजा भीमदेव अपने अनुयायियों सहित राजधानी छोड़कर भाग गया किन्तु सोमनाथ की साधारण जनता और पुजारी अपने स्थानों पर डटे रहे क्योंकि उनका विश्वास था कि भगवान सोमनाथ की उपस्थिति के कारण वे लोग पूर्णतया सुरक्षित हैं।

फरिश्ता के अनुसार सोमनाथ के लोगों ने पहले दिन आक्रमणकारियों का ऐसा प्रतिरोध किया कि उन्हें पीछे हटना पड़ा। दूसरे दिन शत्रु सेना नगर की दीवारों पर चढ़ने में सफल हो गई किन्तु नगर रक्षकों ने उन्हें वापिस उतरने के लिए बाध्य कर दिया। तीसरे दिन भयंकर प्रत्यक्ष युद्ध हुआ जिसमें अपनी सेना को बिखरता देखकर महमूद खुदा की मदद के लिए इबादत करने लगा। इब्न–अल–असीर के अनुसार हिन्दूओं की नियोजित सुरक्षा टूटने लगी तो उन्होंने आस्था की चरम शक्ति को प्रदर्शित किया। ''सुरक्षाकर्ताओं के झुंड के बाद झुंड सोमनाथ के मंदिर में प्रवेश करते रहे, वे बार–बार यह प्रण करते रहे कि वे मरते दम तक लड़ते रहेंगे यद्यपि कुछ ही जीवित रहे। अन्ततः महमूद ने बिना किसी प्रतिरोध के नगर पर अधिकार कर लिया और कत्लेआम की आज्ञा दी। 50,000 से अधिक स्त्री–पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया गया। विजय के बाद महमूद ने स्वयं सोमनाथ की मूर्ति को तोड़ा और उसके टुकड़ों को गजनी, मक्का व मदीना भिजवाकर वहाँ की प्रमुख मस्जिदों की सीढ़ियों के नीचे डलवा दिया। महमूद का अंतिम आक्रमण 1027 ई. में सिंध के जाटों के विरुद्ध हुआ क्योंकि पिछले आक्रमण के समय सोमनाथ से गजनी लौटते समय उसे इन लोगों द्वारा काफी क्षति पहुँचाई गई थी।

1173 ई. में गौर के शासक गियासुद्दीन ने गजनी पर अधिकार कर लिया और अपने छोटे भाई शिहाबुद्दीन को गजनी का शासक नियुक्त किया। यही शिहाबुद्दीन इतिहास में मुईजुद्दीन मुहम्मद गौरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गौरी महत्त्वाकांक्षी शासक था। गजनी का शासक बनने के बाद उसने भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसके भारत पर आक्रमण के निम्नलिखित उद्देश्य थे :–

1. धन सम्पदा प्राप्त करना
2. साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा
3. पंजाब में गजनी और मुल्तान में इस्माइलिया वंश की सत्ता को नष्ट करना
4. इस्लाम धर्म का प्रचार करना

पृथ्वीराज चौहान (1177–1192 ई.)

मुहम्मद गौरी के भारत पर आक्रमणों के समय दिल्ली व अजमेर पर पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) का शासन था जो इतिहास में 'रायपिथौरा' के नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज का जन्म 1166 ई. में हुआ था। वह अपने पिता सोमेश्वर की मृत्यु के बाद मात्र 11 वर्ष की आयु में चौहान साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। पृथ्वीराज की माँ कर्पूरदेवी कुशल राजनीतिज्ञा थी। इस कारण उसने प्रधानमंत्री कदम्बवास और सेनापति भुवनमल्ल की सहायता से राज्य का शासन आसानी से संभाल लिया। एक वर्ष तक माता के संरक्षण में रहने के बाद 1178 ई. में पृथ्वीराज ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। शीघ्र ही उसने उच्च पदों पर अपने विश्वसनीय अधिकारियों की नियुक्ति कर विजय नीति को क्रियान्वित करने का बीड़ा उठाया। इतिहासकार गोपीनाथ शर्मा के अनुसार इस विजय नीति के तीन पक्ष थे – स्वजनों के विरोध से मुक्ति पाना, पड़ौसी राज्यों का दमन तथा विदेशी शत्रुओं का मुकाबला।

सम्राट पृथ्वीराज चौहान

पृथ्वीराज चौहान की विजयें– पृथ्वीराज को अल्पव्यस्क देख कर उसके चाचा अपरगांग्य ने शासक बनने के लिए विद्रोह कर

दिया। पृथ्वीराज ने उसे परास्त कर उसकी हत्या कर डाली किन्तु विरोधी दल शांत नहीं हुआ। अपरगांग्य के छोटे भाई नागार्जुन ने विद्रोह का बिगुल बजाते हुए गुरूग्राम (गुड़गांव) पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज द्वारा सेना भेजने पर नागार्जुन गुरूग्राम (गुड़गांव) छोडकर भाग गया। उसके सेनापति देवभट्ट ने कुछ समय तक गुरूग्राम (गुड़गांव) को बचाने का प्रयास अवश्य किया किन्तु पृथ्वीराज की सेना सफल रही। विद्रोहियों को मौत के घाट उतार दिया गया और उनके सिर नगर की प्राचीरों पर लटका दिये गये जिससे भविष्य में अन्य शत्रु उनके विरोध का साहस न कर सकें। 1182 ई. में पृथ्वीराज ने गुड़गांव व हिसार के आसपास बसी हुई भण्डानक नामक उपद्रवी जाति को पराजित कर अपने राज्य की उत्तरी सीमा को सुरक्षित किया। समसामयिक लेखक जिनपति सूरि ने पृथ्वीराज द्वारा भण्डानकों के दमन का उल्लेख किया है।

प्रारम्भिक सफलताओं के बाद पृथ्वीराज ने प्राचीन भारतीय शासकों के समान दिग्विजय नीति अपनाने का फैसला किया। भण्डानकों के दमन के बाद उसकी सीमाएँ चन्देलों के महोबा राज्य से मिलने लग गई थी। अपने कुछ सैनिकों की हत्या का बदला लेने के लिए पृथ्वीराज ने 1182 ई. में महोबा राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में चंदेल शासक परमर्दीदेव के दो सेनापति आल्हा व ऊदल लड़ते हुए मारे गए। विजयी पृथ्वीराज पंजुनराय को महोबा का अधिकारी नियुक्त कर लौट आया।

पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने आबू की राजकुमारी इच्छिनी से विवाह कर गुजरात के चालुक्य शासक भीमदेव द्वितीय को अप्रसन्न कर दिया क्योंकि भीमदेव भी इच्छिनी के साथ विवाह का इच्छुक था। डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार दोनों शासकों के बीच संघर्ष का वास्तविक कारण उनके राज्यों की सीमाएँ मिलना और दोनों शासकों की महत्त्वाकांक्षायें थी। दोनों शासकों के बीच छोटी–मोटी झड़पों के बाद जगदेव प्रतिहार की मध्यस्थता से संधि हो गई किन्तु इस संधि से परम्परागत वैमनस्य समाप्त नहीं हुआ और चौहान–चालुक्य द्वेष भीतर ही भीतर सुलगता रहा।

पृथ्वीराज के पूर्व में स्थित कन्नौज के गहड़वाल राज्य का शासक इस समय जयचन्द्र था। दिल्ली पर नियन्त्रण को लेकर चौहानों और गहड़वालों के बीच परम्परागत वैमनस्य चला आ रहा था। पृथ्वीराज दिग्विजय योजना को पूर्णता प्रदान करने के लिए कन्नौज को अपने राज्य में मिलाना चाहता था, वहीं जयचन्द्र भी उसकी होड़ में विजय योजनाएँ बना रहा था। इस कारण दोनों के बीच संघर्ष होना अवश्यम्भावी था। पृथ्वीराज द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का बलपूर्वक अपहरण कर विवाह किया जाना दोनों शासकों के बीच संघर्ष का चरमोत्कर्ष था। अपनी पुत्री के अपहरण से जयचन्द्र पृथ्वीराज का पक्का शत्रु बन गया और बदला लेने का अवसर ढूंढने लगा। एक प्रचलित मत के अनुसार उसने सहायता का आश्वासन देकर मुहम्मद गौरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। पुरातन प्रबन्ध संग्रह के अनुसार गौरी के हाथों पृथ्वीराज की पराजय की खबर सुनकर जयचन्द्र ने अपनी राजधानी में खुशियाँ मनाई थी।

संयोगिता की कहानी– चन्दरबरदाई की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार जयचन्द्र और पृथ्वीराज चौहान के बीच संघर्ष का कारण पृथ्वीराज चौहान द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का अपहरण कर उसके साथ विवाह करना था। कथानक के अनुसार पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता के बीच प्रेम था किन्तु जयचन्द्र पृथ्वीराज के साथ शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों के चलते अपनी पुत्री संयोगिता का विवाह किसी अन्य राजा के साथ करना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने राजसूय यज्ञ के साथ संयोगिता के स्वयंवर का आयोजन किया। इस आयोजन में उसने पृथ्वीराज को छोड़कर सभी प्रमुख राजा–महाराजाओं को आमन्त्रित किया। इतना ही नहीं जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए उसकी मूर्ति बनवाकर द्वारपाल के स्थान पर लगवा दी। स्वयंवर के समय जब सभी राजा–महाराजा संयोगिता की वरमाला का इन्तजार कर रहे थे उस समय संयोगिता ने पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में वरमाला डाल दी। इसी वक्त पृथ्वीराज अपनी सेना सहित घटनास्थल पर पहुँच गया और संयोगिता को उठाकर ले गया। जयचन्द्र के सैनिकों से पृथ्वीराज को रोकने का प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे। डॉ. आर. एस. त्रिपाठी, गौरीशंकर हीराचन्द और विश्वेश्वरनाथ रेऊ जैसे इतिहासकारों ने इसकी ऐतिहासिकता को मात्र प्रेमाख्यान कहकर अस्वीकार कर दिया है जबकि डॉ. दशरथ शर्मा ने 'दि अर्ली चौहान डाइनेस्टीज' में संयोगिता की घटना को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार किया है।

पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के बीच संघर्ष– गजनी का गवर्नर नियुक्त होने के बाद मुहम्मद गौरी ने 1175 ई. में मुल्तान पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने गुजरात, सियालकोट और लाहौर के युद्धों में विजय हासिल कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। राजस्थानी स्रोतों के अनुसार इस दौरान उसकी पृथ्वीराज चौहान के साथ अनेक बार लड़ाइयाँ हुई और हर बार उसे पराजय का सामना ही करना पड़ा। पृथ्वीराज रासो में 21 तथा हम्मीर महाकाव्य में सात बार गौरी पर पृथ्वीराज की विजयों का दावा किया गया है। दोनों के बीच दो निर्णायक युद्ध हुए। 1191 ई. में लाहौर से रवाना होकर मुहम्मद गौरी तबरहिन्द नामक स्थान पर अधिकार करते हुए तराइन तक पहुँच गया। यहाँ दोनों पक्षों के बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें पृथ्वीराज चौहान के दिल्ली सामंत गोविन्दराज ने अपनी बर्छी के वार से मुहम्मद गौरी को घायल कर दिया। घायल गौरी अपनी सेना सहित गजनी भाग गया। पृथ्वीराज ने तबरहिन्द पर अधिकार कर काजी जियाउद्दीन को बंदी बना लिया जिसे बाद में एक बड़ी धनराशि के बदले रिहा कर दिया गया।

एक वर्ष बाद मुहम्मद गौरी अपनी सेना के साथ तराइन के मैदान में पुनः आ धमका। पृथ्वीराज उसका मुकाबला करने पहुँच गया किन्तु गौरी ने इस बार अपने शत्रु को संधि वार्ता के झांसे में फंसा लिया। कई दिन तक संधि वार्ता चलने के कारण चौहान सेना निश्चिंत होकर आमोद–प्रमोद में डूब गई। इसका फायदा उठाकर गौरी ने एक रात्रि अचानक आक्रमण कर दिया। राजपूत सेना इस अप्रत्याशित आक्रमण को झेल नहीं पाई और पराजित हुई। पराजित पृथ्वीराज चौहान को सिरसा के पास

सरस्वती नामक स्थान पर बंदी बना लिया गया। पृथ्वीराज रासो के अनुसार बंदी पृथ्वीराज को गौरी अपने साथ गजनी ले गया जहाँ शब्द भेदी बाण के प्रदर्शन के समय पृथ्वीराज ने गौरी को मार डाला। जबकि समकालीन इतिहासकार हसन निजामी के अनुसार तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी के अधीनस्थ शासक के रूप में अजमेर पर शासन किया था। इसामी के कथन के पक्ष में एक सिक्के का भी संदर्भ दिया जाता है जिसके एक तरफ मुहम्मद बिन साम और दूसरी तरफ पृथ्वीराज नाम अंकित है।

पृथ्वीराज चौहान की पराजय के कारण– विजेता होने के बावजूद पृथ्वीराज चौहान में दूरदर्शिता व कूटनीति का अभाव था। उसने अपने पड़ौसी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्व सम्बन्ध स्थापित नहीं किये अपितु उनके साथ युद्ध करके शत्रुता मोल ले ली। इसी कारण मुहम्मद गौरी के विरुद्ध संघर्ष में उसे उनका कोई सहयोग नहीं मिला। 1178 ई. में जब मुहम्मद गौरी ने गुजरात के शासक भीमदेव द्वितीय पर आक्रमण किया था, उस समय पृथ्वीराज ने गुजरात की कोई सहायता न कर एक भूल की। तराइन के प्रथम युद्ध में पराजित होकर भागती तुर्क सेना पर आक्रमण न करना भी उसकी एक भयंकर भूल सिद्ध हुई। यदि उस समय शत्रु सेना पर प्रबल आक्रमण करता तो मुहम्मद गौरी भारत पर पुनः आक्रमण करने के बारे में कभी नहीं सोचता। संयोगिता के साथ विवाह करने के बाद उसने राजकार्यों की उपेक्षा कर अपना जीवन विलासिता में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था।

पृथ्वीराज चौहान का मूल्यांकन– पृथ्वीराज एक वीर और साहसी शासक था। अपने शासनकाल के प्रारम्भ से ही वह युद्ध करता रहा जो उसके अच्छे सैनिक और सेनाध्यक्ष होने को प्रमाणित करता है। अनेक युद्धों में सफलता प्राप्त कर उसने 'दलपंगुल' (विश्वविजेता) की उपाधी धारण की। तराइन के द्वितीय युद्ध में मुहम्मद गौरी द्वारा छल–कपट का सहारा लेने से पूर्व वह किसी भी लड़ाई में नहीं हारा था। एक विजेता के साथ–साथ वह विद्यानुरागी था। उसके दरबार में अनेक विद्वान रहते थे जिनमें – विद्यापति गौड़, वागीश्वर, जनार्दन, जयानक, विश्वरूप, आशाधर आदि प्रमुख थे। चन्दरबरदाई उसका राजकवि था जिसका ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।

रणथम्भौर का हम्मीर चौहान (1282–1301 ई.)

हम्मीर अपने पिता जैत्रसिंह का तीसरा पुत्र था। सभी पुत्रों में योग्य होने के कारण उसका राज्यारोहण उत्सव जैत्रसिंह ने अपने जीवनकाल में ही 1282 ई. में सम्पन्न करवा दिया था। शासन का भार संभालने के बाद 1288 ई. तक हम्मीर ने दिग्विजय की नीति का अवलम्बन कर अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। विजित राज्यों को उसने धन लेकर छोड़ दिया। दिग्विजय के बाद हम्मीर ने कोटि यज्ञों का आयोजन किया जिससे उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। मेवाड़ के शासक समरसिंह को पराजित कर हम्मीर ने अपनी धाक सम्पूर्ण राजस्थान में जमा दी।

हम्मीर और जलालुद्दीन खिलजी– हम्मीर को अपनी शक्ति बढ़ाने का मौका इसलिए मिल गया कि इस दौरान दिल्ली में कमजोर सुल्तानों के कारण अव्यवस्था का दौर चल रहा था। 1290 ई. में दिल्ली का सुल्तान बनने के बाद जलालुद्दीन खिलजी ने हम्मीर की बढ़ती हुई शक्ति को समाप्त करने का निर्णय लिया। सुल्तान ने झाँई पर अधिकार कर रणथम्भौर को घेर लिया किन्तु सभी प्रयत्नों की असफलता के बाद शाही सेना को दिल्ली लौट जाना पड़ा। सुल्तान ने 1292 ई. में एक बार फिर रणथम्भौर विजय का प्रयास किया। हम्मीर के सफल प्रतिरोध के कारण इस बार भी उसे निराशा ही हाथ लगी। इस अभियान के समय जब मुगल सेना को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ रही थी, तब जलालुद्दीन ने यह कहते हुए दुर्ग का घेरा हटा लिया कि "मैं ऐसे सैंकड़ों किलों को भी मुसलमान के एक बाल के बराबर महत्त्व नहीं देता।" जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के इन अभियानों का आँखों देखा वर्णन अमीर खुसरो ने 'मिफ्ता–उल–फुतूह' नामक ग्रंथ में किया है।

हम्मीर और अलाउद्दीन खिलजी– 1296 ई. में अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी की हत्या कर दिल्ली का सुल्तान बन गया। कुछ वर्षों बाद ही अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये जिनके निम्नलिखित कारण थे –

1. रणथम्भौर सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण था। अलाउद्दीन खिलजी इस अभेद दुर्ग पर अधिकार कर राजपूत नरेशों पर अपनी धाक जमाना चाहता था।
2. रणथम्भौर दिल्ली के काफी निकट था। इस कारण यहाँ के चौहानों की बढ़ती हुई शक्ति को अलाउद्दीन खिलजी किसी भी स्थिति में सहन नहीं कर सकता था।
3. अलाउद्दीन खिलजी से पहले उसके चाचा जलालुद्दीन खिलजी ने इस दुर्ग पर अधिकार करने के लिए दो बार प्रयास किए थे किन्तु वह असफल रहा। अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा की पराजय का बदला लेना चाहता था।
4. अलाउद्दीन खिलजी एक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी शासक था। रणथम्भौर पर आक्रमण इसी नीति का परिणाम था।

हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोहियों को *शरण देना –* नयनचन्द्र सूरी की रचना 'हम्मीर महाकाव्य' के अनुसार रणथम्भौर पर आक्रमण का कारण यहाँ के शासक हम्मीर द्वारा अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोही सेनापति मीर मुहम्मद शाह को शरण देना था। मुस्लिम इतिहासकार इसामी ने भी अपने विवरण में इस कारण की पुष्टि की है। उसने लिखा है कि 1299 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने दो सेनापतियों उलूग खां व नूसरत खां को गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। गुजरात विजय के बाद जब यह सेना वापिस लौट रही थी तो जालौर के पास लूट के माल के बंटवारे के प्रश्न पर 'नव–मुसलमानों' (जलालुद्दीन फिरोज खिलजी के समय भारत में बस चुके वे मंगोल, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था) ने विद्रोह कर दिया। यद्यपि विद्रोहियों का बर्बरता के साथ दमन

कर दिया गया किन्तु उनमें से मुहम्मदशाह व उसका भाई कैहब्रु भाग कर रणथम्भौर के शासक हम्मीर के पास पहुँचने में सफल हो गए। हम्मीर ने न केवल उन्हें शरण दी अपितु मुहम्मदशाह को 'जगाना' की जागीर भी दी। चन्द्रशेखर की रचना 'हम्मीर हठ' के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी की एक मराठा बेगम से मीर मुहम्मदशाह को प्रेम हो गया था और उन दोनों ने मिलकर अलाउद्दीन खिलजी को समाप्त करने का एक षड़यंत्र रचा। अलाउद्दीन खिलजी को समय रहते इस षड़यंत्र की जानकारी मिल जाने के कारण मीर मुहम्मदशाह को बंदी बनाने का प्रयास किया गया किन्तु वह भागकर हम्मीर की शरण में पहुँच गया। अलाउद्दीन खिलजी की तरफ से इन विद्रोहियों को सौंप देने की माँग की गई। इस माँग को जब हम्मीर द्वारा ठुकरा दिया गया तो अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने रणथम्भौर पर आक्रमण कर दिया।

हम्मीर की प्रारम्भिक सफलताएँ– 1299 ई. के अंत में अलाउद्दीन खिलजी ने उलूग खां, अलप खां और नुसरत खां के नेतृत्व में एक सेना रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिए भेजी। इस सेना ने 'रणथम्भौर की कुँजी' झाँई पर अधिकार कर लिया। इसामी के अनुसार विजय के बाद उलूग खां ने झाँई का नाम बदलकर 'नौ शहर' कर दिया। 'हम्मीर महाकाव्य' में लिखा है कि हम्मीर इस समय कोटियज्ञ समाप्त कर 'मुनिव्रत' में व्यस्त था। इस कारण स्वयं न जाकर अपने दो सेनापतियों – भीमसिंह व धर्मसिंह को सामना करने के लिए भेजा। इन दोनों सेनापतियों ने खिलजी सेना को पीछे की तरफ खदेड़ दिया तथा उनसे लूट का माल छिन लिया। राजपूत सेना ने शत्रु सेना पर भयंकर हमला किया जिसमें अलाउद्दीन खिलजी की सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। शाही सेना से लूटी गई सामग्री लेकर धर्मसिंह के नेतृत्व में सेना का एक दल तो रणथम्भौर लौट गया किन्तु भीमसिंह पीछे रह गया। इस अवसर का लाभ उठाकर बिखरी हुई शाही सेना ने अलपखां के नेतृत्व में उस पर हमला कर दिया। इस संघर्ष में भीमसिंह अपने सैंकड़ों सैनिकों सहित मारा गया।

भीमसिंह की मृत्यु के लिए हम्मीर ने धर्मसिंह को उत्तरदायी मानते हुए उसे अंधा कर दिया और उसके स्थान पर भोजराज को नया मंत्री बनाया। भोजराज रणथम्भौर की बिगड़ी हुई स्थिति को संभाल नहीं पाया और शीघ्र ही अलोकप्रिय हो गया। ऐसी स्थिति में धर्मसिंह ने हम्मीर को राज्य की आय बढ़ाने का आश्वासन देकर अपने पुराने अधिकार पुनः प्राप्त कर लिये। धर्मसिंह अपने अपमान का बदला लेना चाहता था इसलिए उसने प्रजा पर कई कर लगा कर उन्हें बलात् वसूल करना प्रारम्भ कर दिया। इससे प्रजा में असंतोष बढ़ने लगा।

उधर भोजराज हम्मीर द्वारा अपनी सेवा से निकाले जाने पर नाराज होकर अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में चला गया। उसने सुल्तान को रणथम्भौर पर आक्रमण के लिए उकसाना प्रारम्भ कर दिया। सुल्तान ने रणथम्भौर विजय के लिए सेना भेज दी किन्तु हिन्दुवाट की घाटी में हुई मुठभेड़ में चौहान सेना ने शाही सेना को बुरी तरफ पराजित किया।

इस अपमानजनक पराजय की जानकारी मिलने पर सुल्तान ने उलूगखां और नुसरतखां के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी। इस सेना ने झाँइ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। झाँई विजय के बाद उलूग खां ने मेहलनसी नामक दूत के साथ हम्मीर के पास अलाउद्दीन खिलजी का संदेश पुनः भिजवाया। इस संदेश में दोनों विद्रोहियों – मुहम्मदशाह व उसके भाई कैहब्रु को सौंपने के साथ हम्मीर की बेटी देवलदी का विवाह सुल्तान के साथ करने की माँग की गई थी। यद्यपि देवलदी ने राज्य की रक्षा के लिए इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने की सुझाव दिया किन्तु हम्मीर ने संघर्ष का रास्ता चुना।

उलूग खां ने रणथम्भौर दुर्ग पर घेरा डालकर उसके चारों तरफ पाशिब व गरगच बनवाये और मगरबों द्वारा दुर्ग रक्षकों पर पत्थरों की बौछार की। दुर्ग में भी भैरव यंत्र, ठिकुलिया व मर्कटी यंत्र नामक पत्थर बरसाने वाले यंत्र लगे थे जिनके द्वारा फैंका गया एक पत्थर संयोग से नुसरत खां को लगा। नुसरतखां इसमें घायल हुआ और कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई। इससे शाही सेना में निराशा की स्थिति पैदा हो गई। हम्मीर ने इस स्थिति का फायदा उठाने के लिए दुर्ग से बाहर निकलकर शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण से घबराकर उलूग खां को झाँई की तरफ पीछे हटना पड़ा।

अलाउद्दीन खिलजी का रणथम्भौर आना व रणथम्भौर पर अधिकार– उलूग खां की असफलता के बाद अलाउद्दीन खिलजी स्वयं रणथम्भौर पहुँचा। अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'खजाईन–उल–फुतूह' में इस अभियान का आंखों देखा वर्णन करते हुए लिखा है कि सुल्तान ने इस आक्रमण में पाशेब, मगरबी व अर्रादा की सहायता ली। काफी प्रयासों के बाद भी जब अलाउद्दीन खिलजी दुर्ग को जीतने में असफल रहा तो उसने छल और कूटनीति का आश्रय लेते हुए हम्मीर के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। हम्मीर द्वारा संधि के लिए अपने सेनापति रतिपाल को भेजा गया। अलाउद्दीन खिलजी ने रतिपाल व उसकी सहायता से हम्मीर के एक अन्य सेनापति रणमल को रणथम्भौर दुर्ग का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। चौहान रचनाओं में इस बात का उल्लेख किया गया है कि अलाउद्दीन ने हम्मीर के एक अधिकारी को अपनी तरफ मिलाकर दुर्ग में स्थित खाद्य सामग्री को दूषित करवा दिया। इससे दुर्ग में खाद्यान सामग्री का भयंकर संकट पैदा हो गया। अमीर खुसरो ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "सोने के दो दानों के बदले में चावल का एक दाना भी नसीब नहीं हो पा रहा था।" खाद्यान के अभाव में हम्मीर को दुर्ग के बाहर निकलना पड़ा किन्तु रणमल और रतिपाल के विश्वासघात के कारण उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। युद्ध के दौरान हम्मीर लड़ता हुआ मारा गया और उसकी रानी रंगदेवी के नेतृत्व में राजपूत वीरांगनाओं द्वारा जौहर किया गया। यह रणथम्भौर का प्रथम साका कहा जाता है। जोधराज की रचना 'हम्मीर रासो' के अनुसार इस जौहर में मुहम्मदशाह की स्त्रियाँ भी रंगदेवी के साथ चिता में भस्म हो गई। कुछ स्थानों पर उल्लेख है कि रंगदेवी ने किले में स्थित 'पदमला तालाब' में जल जौहर किया था। इस प्रकार 11 जुलाई, 1301 ई. को अलाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर अधिकार कर लिया।

युद्ध में मीर मुहम्मदशाह भी हम्मीर की तरफ से संघर्ष करते हुए घायल हुआ। घायल मुहम्मदशााह पर नजर पड़ने पर

अलाउद्दीन खिलजी ने उससे पूछा कि 'अगर तुझे ठीक करवा दिया जाए तो तुम क्या करोगे?' इस पर बड़ी बहादूरी के साथ मुहम्मदशाह ने जवाब दिया कि ''अगर मुझे ठीक करवाया गया तो मैं दो काम करूँगा – पहला तुम्हें मार दूँगा और दूसरा हम्मीर के किसी वंशज को रणथम्भौर के सिंहासन पर बैठा दूँगा।'' ऐसा जवाब सुनकर अलाउद्दीन खिलजी काफी क्रोधित हुआ और उसने हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा कर मुहम्मदशाह की हत्या करवा दी।

मूल्यांकन – हम्मीर ने अपने जीवन में कुल 17 युद्ध लड़े जिनमें से 16 में वह विजयी रहा। बार–बार के प्रयासों के बाद भी जलालुद्दीन खिलजी का रणथम्भौर पर अधिकार नहीं कर पाना हम्मीर की शूरवीरता व सैनिक योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है। वह वीर योद्धा ही नहीं अपितु एक उदार शासक भी था। विद्वानों के प्रति हम्मीर की बड़ी श्रद्धा थी। विजयादित्य उसका सम्मानित दरबारी कवि तथा राघवदेव उसका गुरु था। कोटियज्ञ के सम्पादन के द्वारा उसने अपनी धर्मनिष्ठा का परिचय दिया। हम्मीर अपने वचन व शरणागत की रक्षा के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। उसने अपनी शरण में आए अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोहियों को न लौटाने का हठ कर लिया। इसी हठ के कारण हम्मीर ने अपना परिवार व राज्य खो दिया :–

सिंघ सवन, सत्पुरूष वचन, कदली फलै इक बार।
तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार।।

(शेरनी जंगल का राजा बनने वाले एक ही शिशु को जन्म देती है, सत्पुरुष द्वारा दिया गया वचन भी बदला नहीं जा सकता, कैले का पौधा भी एक ही बार फलता है, स्त्री के सिर पर (लग्नार्थ) दूसरी बार तेल सिंचित नहीं किया जाता, उसी प्रकार हम्मीर द्वारा दिया हुआ वचन कभी नहीं बदलता।)

उसके इन गुणों की प्रशंसा के बावजूद उसकी भूलों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उसने अपने पड़ौसी राज्यों को छेड़कर और उनसे धन की वसूली कर अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ा ली। अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध संगठन के प्रयास न करना भी उसकी रणनीतिक भूल थी। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण से पहले अपनी जनता पर करवृद्धि के कारण उसकी लोकप्रियता में कमी आई। इन कमियों के बावजूद हम्मीर को इतिहास में श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। डॉ. दशरथ शर्मा ने लिखा है कि ''यदि उसमें कोई दोष भी थे तो वे उसके वीरोचित युद्ध, वंश प्रतिष्ठा की रक्षा तथा मंगोल शरणागतों की रक्षा के सामने नगण्य हो जाते हैं।'' नयनचन्द्र सूरी की रचना हम्मीर महाकाव्य, व्यास भाण्ड रचित हम्मीरायण, जोधराज रचित हम्मीर रासो, अमृत कैलाश रचित 'हम्मीर बन्धन' और चन्द्रशेखर द्वारा रचित 'हम्मीर हठ' नामक ग्रंथों की रचना इसी हम्मीर को नायक बनाकर की गई है।

रावल रत्नसिंह (1302–1303 ई.)

रावल समरसिंह (1273–1302 ई.) की मृत्यु के बाद 1302 ई. में मेवाड़ के सिंहासन पर उसका पुत्र रत्नसिंह बैठा। रत्नसिंह को केवल एक वर्ष ही शासन करने का अवसर मिला जो दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के लिए प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण के प्रमुख कारण इस प्रकार थे :–

1. अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा– अलाउद्दीन खिलजी एक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी शासक था। वह सिकन्दर के समान विश्व विजेता बनना चाहता था जिसका प्रमाण उसकी उपाधि 'सिकन्दर सानी' (द्वितीय सिकन्दर) थी। दक्षिण भारत की विजय और उत्तर भारत पर अपने अधिकार को स्थायी बनाये रखने के लिए राजपूत राज्यों को जीतना आवश्यक था। चित्तौड़ पर उसका आक्रमण इसी नीति का हिस्सा था।

2. मेवाड़ की बढ़ती हुई शक्ति– जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह जैसे पराक्रमी शासकों के काल में मेवाड़ की सीमाओं में लगातार वृद्धि होती जा रही थी। इल्तुतमिश, नासिरुद्दीन महमूद और बलबन जैसे सुल्तानों ने मेवाड़ की इस बढ़ती शक्ति पर लगाम लगाने का प्रयास किया किन्तु वे सफल नहीं हुए। 1299 ई. में मेवाड़ के रावल समरसिंह ने गुजरात अभियान के लिए जाती हुई शाही सेना का सहयोग करना तो दूर, उल्टे उससे दण्ड वसूल करके ही आगे जाने दिया। अलाउद्दीन खिलजी उस घटना को भूल नहीं पाया था।

3. चित्तौड़ का भौगोलिक एवं सामरिक महत्त्व– दिल्ली से मालवा, गुजरात तथा दक्षिण भारत जाने वाला प्रमुख मार्ग चित्तौड़ के पास से ही गुजरता था। इस कारण अलाउद्दीन खिलजी के लिए मालवा, गुजरात और दक्षिण भारत पर राजनीतिक एवं व्यापारिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए चित्तौड़ पर अधिकार करना आवश्यक था। मौर्य राजा चित्रांगद द्वारा निर्मित चित्तौड़ का दुर्ग अभी तक किसी भी मुस्लिम आक्रमणकारी द्वारा जीता नहीं जा सका था। यह भी अलाउद्दीन खिलजी के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती थी।

4. पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा– कुछ इतिहासकारों के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी मेवाड़ के शासक रत्नसिंह की सुन्दर पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करना चाहता था। उसने रत्नसिंह को संदेश भिजवाया कि वह सर्वनाश से बचना चाहता है तो अपनी पत्नी पद्मिनी को शाही हरम में भेज दे। रत्नसिंह द्वारा इस प्रस्ताव को अस्वीकार किए जाने पर अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। शेरशाह सूरी के समय 1540 ई. के लगभग लिखी गई मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' के अनुसार इस आक्रमण का कारण पद्मिनी को प्राप्त करना ही था।

अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण– 28 जनवरी 1303 ई. को दिल्ली से रवाना होकर अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ को घेर लिया। रत्नसिंह ने शाही सेना को मुँह तोड़ जवाब दिया जिसके कारण दो माह की घेरेबंदी के बाद भी शाही सेना कोई सफलता अर्जित नहीं कर पाई। ऐसी स्थिति में सुल्तान को अपनी रणनीति में परिवर्तन करना पड़ा। उसने दुर्ग की दीवार के पास ऊँचे–ऊँचे चबूतरों का निर्माण करवाया और उन पर 'मंजनिक' तैनात करवाये। किले की दीवारों पर भारी पत्थरों के प्रहार शुरू हुए किन्तु दुर्भेध दीवारें टस से मस नहीं हुई। लम्बे घेरे के कारण दुर्ग में खाद्यान सामग्री नष्ट होने लग गई थी। चारों तरफ सर्वनाश के चिह्न दिखाई देने पर राजपूत सैनिक किले के द्वार खोल कर मुस्लिम सेना पर टूट पड़े। भीषण संघर्ष में रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ और उधर पद्मिनी के नेतृत्व में चित्तौड़ का पहला जौहर

हुआ। इस प्रकार 26 अगस्त 1303 ई. को चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी का अधिकार हो गया। अगले दिन सुल्तान ने अपने सैनिकों को आम जनता के कत्लेआम का आदेश दिया। इस अभियान के दौरान मौजूद अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'खजाईन–उल–फुतूह' (तारीखे अलाई) में लिखा है कि एक ही दिन में लगभग 30,000 असहाय लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ का नाम बदलकर 'खिज्राबाद' कर दिया और अपने बेटे खिज्रखां को वहाँ का प्रशासन सौंप कर दिल्ली लौट आया। खिज्रखां ने गंभीरी नदी पर एक पुल का निर्माण करवाया। उसने चित्तौड़ की तलहटी में एक मकबरा भी बनवाया जिसमें लगे हुए एक फारसी लेख में अलाउद्दीन खिलजी को ईश्वर की छाया और संसार का रक्षक कहा गया है।

पद्मिनी की कहानी– ''सिंहल द्वीप (श्रीलंका) में गंधर्वसेन नामक राजा था। उसकी पटरानी चंपावती से पद्मिनी नामक एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उसके पास हीरामन नाम का एक सुन्दर और चतुर तोता था। एक दिन वह पिंजरे से उड़ गया और एक बहेलिए द्वारा पकड़ा जाकर एक ब्राह्मण के हाथ बेचा गया। उस ब्राह्मण ने उसको चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह को एक लाख रुपये में बेच दिया। रत्नसिंह की रानी नागमती ने एक दिन श्रृंगार कर तोते से पूछा – क्या मेरी जैसे सुंदरी जगत में कोई है? इस पर तोते ने उत्तर दिया कि जिस सरोवर में हंस नहीं आया, वहाँ बगुला ही हंस कहलाता है। रत्नसिंह तोते के मुख से पद्मिनी के रूप, गुण आदि की प्रशंसा सुनकर उस पर मुग्ध हो गया और योगी बनकर तोते सहित सिंहल को चला। अनेक संकट सहता हुआ वह सिंहल द्वीप पहुँचा। तोते ने पद्मिनी के सम्मुख रत्नसिंह के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की प्रशंसा कर कहा कि तेरे योग्य वर तो यही है और वह तेरे प्रेम से मुग्ध होकर यहाँ आ पहुँचा है। वसंत पंचमी के दिन वह बन–ठनकर उस मंदिर में गई, जहाँ रत्नसिंह ठहरा हुआ था। वहाँ दोनों एक दूसरे को देखते ही परस्पर प्रेम–बद्ध हो गए। अंत में गंधर्वसेन ने उसके वंश आदि का हाल जानकर दोनों का विवाह कर दिया। विवाह के बाद रत्नसिंह पद्मिनी के साथ अपनी राजधानी चित्तौड़ लौट आया।

रत्नसिंह द्वारा मेवाड़ से निकाले गए राघव चेतन नामक तांत्रिक ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए दिल्ली जाकर सुल्तान अलाउद्दीन के समक्ष पद्मिनी के रूप की तारीफ की और उसे चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस पर अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ पर चढ़ आया। आठ वर्ष तक घेरा डालने के बाद भी जब सुल्तान चित्तौड़ को नहीं जीत पाया तो उसने प्रस्ताव रखा कि यदि उसे पद्मिनी का प्रतिबिम्ब ही दिखा दिया जाये तो वह दिल्ली लौट जायेगा। राणा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दर्पण में पद्मिनी का प्रतिबिम्ब देखकर जब अलाउद्दीन वापिस लौट रहा था, उस समय उसने रत्नसिंह को कैद कर लिया और रिहाई के बदले पद्मिनी की मांग की। सारा वृत्तांत ज्ञात होने पर पद्मिनी ने राणा को छुड़ाने की योजना बनाई और अलाउद्दीन के पास अपनी 1600 सहेलियों के साथ आने का प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव स्वीकार होने पर पद्मिनी सहेलियों के स्थान पर पालकियों में राजपूत योद्धाओं को बैठाकर रवाना हो गई। दिल्ली के पास पहुँचकर शाही हरम में शामिल होने से पहले उसने अंतिम बार अपने पति से मिलने की इच्छा प्रकट की जिसे सुल्तान द्वारा स्वीकृति दे दी गई। जब दोनों पति–पत्नी मिल रहे थे उसी समय राजपूत योद्धा सुल्तान की सेना पर टूट पड़े और उन्हें सुरक्षित चित्तौड़ निकाल दिया। अलाउद्दीन को छल का पता लगा तो उसने ससैन्य राजपूतों का पीछा किया। रत्नसिंह अपने सेनानायकों गोरा व बादल के साथ लड़ता हुआ मारा गया और पद्मिनी ने जौहर किया।''

पद्मिनी की कहानी का ऐतिहासिक उल्लेख मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' में किया गया है। इसके बाद अबुल फजल (अकबरनामा), फरिश्ता (गुलशन–ए–इब्राहिमी), हाजी उद्दवीर (जफरूलवली), कर्नल टॉड (एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटिज ऑफ राजस्थान), फ्रांसीसी यात्री मनूची (स्टीरियो डी मेगोर) तथा मुहणौत नैणसी (नैणसी री ख्यात) ने भी इस कहानी का कुछ हेर–फेर के साथ उल्लेख किया है। बूंदी के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल मिश्रण व कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने पद्मिनी की कहानी की ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं किया है।

महाराणा कुम्भा (1433–1468 ई.)

महाराणा कुम्भा 1433 ई. में मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा। उसके पिता का नाम महाराणा मोकल तथा माता का नाम सौभाग्य देवी था। शासक बनने के बाद उसने अपने यशस्वी पराक्रम द्वारा न केवल आंतरिक और बाह्य कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना किया अपितु अपनी युद्धकालीन और सांस्कृतिक उपलब्धियों द्वारा मेवाड़ के गौरव को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

कुम्भा की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ– शासक बनने के समय कुम्भा के सामने अनेक आन्तरिक और बाह्य समस्याएँ थी। मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह (1364–82 ई.) की उपपत्नी की संतान चाचा और मेरा उसके पिता मोकल की हत्या कर मेवाड़ पर अधिकार करने के लिए प्रयासरत थे। इस कारण मेवाड़ी सरदार दो भागों में विभाजित हो चुके थे – एक गुट कुम्भा समर्थक तथा दूसरा गुट उसके विरोधियों चाचा, मेरा व महपा पंवार का समर्थक। इस अव्यवस्था का लाभ उठाकर अनेक राजपूत सामन्त अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के प्रयास करने लगे थे। कुम्भा द्वारा रणमल व राघवदेव के नेतृत्व में भेजी गई सेना ने शीघ्र ही विद्रोहियों का दमन कर दिया। चाचा और मेरा अपने अनेक समर्थकों के साथ मारे गए किन्तु चाचा का पुत्र एक्का व महपा पंवार भागकर मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी की शरण में पहुँचने में सफल हो गए।

मेवाड़–मालवा सम्बन्ध – मेवाड़ और मालवा दोनों एक–दूसरे के पड़ौसी राज्य थे और यहाँ के शासक अपने–अपने राज्यों की सीमाओं का विस्तार करना चाहते थे। इस कारण दोनों राज्यों के बीच संघर्ष होना आवश्यक था किन्तु दोनों के बीच संघर्ष का तात्कालीक कारण मालवा के सुल्तान द्वारा कुम्भा के विद्रोही सरदारों को अपने यहाँ शरण देना बना। मोकल के हत्यारे महपा पंवार ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी के पास शरण ले रखी थी। कुम्भा ने सुल्तान को पत्र लिखकर महपा की मांग की, जिसे सुल्तान द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इसलिए कुम्भा ने मालवा पर आक्रमण करने का फैसला किया। 1437 ई. में सारंगपुर नामक स्थान पर दोनों की सेनाओं के बीच घनघोर संघर्ष हुआ

जिसमें पराजित होकर महमूद भाग गया। कुम्भा ने महमूद का पीछा करते हुए मालवा को घेर लिया और उसे कैद कर चित्तौड़ ले आया। 6 माह तक सुल्तान को अपने यहाँ कैद रखने के बाद कुम्भा ने उसे बिना शर्त रिहा कर दिया।

महमूद खिलजी ने अपनी पहली पराजय का बदला लेने के लिए 1443 ई. में कुम्भलगढ़ पर आक्रमण कर दिया। कुम्भा ने किले के दरवाजे के नीचे बाण माता के मंदिर के पास दीपसिंह के नेतृत्व में एक मजबूत सेना नियुक्त कर रखी थी। सात दिन तक चले भयंकर संघर्ष में दीपसिंह व उसके साथियों की मृत्यु के बाद ही मंदिर पर शत्रु सेना अधिकार कर पाई। इस मोर्चे को तोड़ने में महमूद की सेना को इतनी हानि उठानी पड़ी कि मंदिर को नष्ट–भ्रष्ट कर उसकी टूटी हुई मूर्तियाँ कसाईयों को माँस तौलने के लिए दे दी गई। नन्दी की मूर्ति का चूना पकाकर राजपूतों को पान में खिलाया गया। महमूद की इस सेना ने चित्तौड़ पर अधिकार करने का प्रयास भी किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। 1446 ई. में महमूद ने एक बार फिर मांडलगढ़ व चित्तौड़ पर अधिकार करने का प्रयास किया किन्तु सफलता उसे इस बार भी न मिल सकी। 1456 ई. में महमूद ने मांडलगढ़ पर अधिकार करने का अंतिम असफल प्रयास किया।

मेवाड़–गुजरात सम्बन्ध– कुम्भा के समय गुजरात की अव्यवस्था समाप्त हो चुकी थी और वहां के शासक अपने प्रभाव क्षेत्र के विस्तार के लिए लालायित थे। मालवा–मेवाड़ के बीच चलने वाले संघर्ष तथा सिरोही व गुजरात की राजनीतिक स्थिति ने मेवाड़–गुजरात के बीच के संघर्ष को आवश्यक बना दिया। 1456 ई. में फिरोज खां की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शम्सखां नागौर का नया स्वामी बना किन्तु फिरोज के छोटे भाई मुजाहिदखां ने शम्सखां को पराजित कर नागौर पर अपना अधिकार कर लिया। शम्सखां ने महाराणा कुम्भा की सहायता से नागौर पर पुनः अधिकार कर लिया किन्तु शीघ्र ही उसने कुम्भा की शर्त के विपरीत नागौर के किले की मरम्मत करवानी प्रारम्भ कर दी। नाराज कुम्भा ने नागौर पर आक्रमण कर अपना अधिकार कर लिया।

शम्सखां ने गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन के साथ अपनी लड़की का विवाह कर उससे सहायता की मांग की। इस पर कुतुबुद्दीन मेवाड़ पर आक्रमण के लिए रवाना हुआ। सिरोही के देवड़ा शासक की प्रार्थना पर उसने अपने सेनापति मलिक शहबान को आबू विजय के लिए भेजा और स्वयं कुम्भलगढ़ की तरफ चला। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार राणा से धन मिलने के बाद सुल्तान गुजरात लौट आया। इसी समय कुतुबुद्दीन के सामने महमूद खिलजी के प्रतिनिधि ताजखां ने मेवाड़ पर गुजरात–मालवा के संयुक्त आक्रमण की योजना रखी जिसके अनुसार मेवाड़ के दक्षिणी भाग पर गुजरात और मेवाड़ के खास भाग व अहीरवाड़ा पर मालवा का अधिकार होना था। 1456 ई. में चम्पानेर नामक स्थान पर हुई इस आशय की संधि के बाद कुतुबुद्दीन आबू पर अधिकार कर चित्तौड़ की तरफ बढ़ा, वहीं महमूद खिलजी ने मालवा की तरफ से मेवाड़ पर आक्रमण किया। फरिश्ता के अनुसार कुम्भा ने धन देकर आक्रमणकारियों को विदा किया जबकि कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति और रसिकप्रिया के अनुसार कुम्भा ने दोनों सुल्तानों को पराजित कर दिया। मुगल शासकों पर विजय के कारण कुम्भा 'हिन्दू सुरत्राण' (हिन्दू बादशाह) के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

महाराणा कुम्भा की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ– कुम्भा एक वीर योद्धा ही नहीं अपितु कलाप्रेमी और विद्यानुरागी शासक भी था। इस कारण उसे 'युद्ध में स्थिर बुद्धि' कहा गया है। एकलिंग माहात्म्य के अनुसार वह वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद, व्याकरण, राजनीति और साहित्य में बड़ा निपुण था। महान् संगीतज्ञाता होने के कारण उसे 'अभिनव भरताचार्य' तथा 'वीणावादन प्रवीणेन' कहा जाता है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के अनुसार वह वीणा बजाने में निपुण था। संगीतराज, संगीत मीमांसा, संगीत क्रम दीपिका व सूड प्रबन्ध उसके द्वारा लिखे प्रमुख ग्रंथ हैं। 'संगीतराज' के पाँच भाग – पाठरत्नकोश, गीतरत्नकोश, वाद्यरत्नकोश, नृत्यरत्नकोश और रसरत्नकोश हैं। उसने चण्डीशतक की व्याख्या, जयदेव के संगीत ग्रंथ गीतगोविन्द और शारंगदेव के संगीतरत्नाकर की टीकाएं भी लिखी। कुम्भा ने महाराष्ट्री (मराठी), कर्णाटी (कन्नड़) तथा मेवाड़ी भाषा में चार नाटकों की रचना की। उसने कीर्तिस्तम्भों के विषय पर एक ग्रंथ रचा और उसको शिलाओं पर खुदवाकर विजय स्तम्भ पर लगवाया जिसके अनुसार उसने जय और अपराजित के मतों को देखकर इस ग्रंथ की रचना की थी। उसका 'कामराज रतिसार' नामक ग्रंथ सात अंगों में विभक्त है।

कुम्भा को 'राणौ रासो' (विद्वानों का संरक्षक) कहा गया है। उसके दरबार में एकलिंग महात्म्य का लेखक कान्ह व्यास तथा प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री मण्डन रहते थे। मण्डन ने देवमूर्ति प्रकरण (रूपावतार),प्रासादमण्डन, राजवल्लभ (भूपतिवल्लभ), रूपमण्डन, वास्तुमण्डन, वास्तुशास्त्र और वास्तुकार नामक वास्तु ग्रंथ लिखे। मण्डन के भाई नाथा ने वास्तुमंजरी और पुत्र गोविन्द ने उद्धारधोरिणी, कलानिधि एवं द्वारदीपिका नामक ग्रंथों की रचना की। 'कलानिधि' देवालयों के शिखर विधान पर केन्द्रित है जिसे शिखर रचना व शिखर के अंग–उपांगों के सम्बन्ध में कदाचित एकमात्र स्वतन्त्र ग्रंथ कहा जा सकता है। आयुर्वेदज्ञ के रूप में गोविन्द की रचना 'सार समुच्चय' में विभिन्न व्याधियों के निदान व उपचार की विधियाँ दी गई हैं। कुम्भा की पुत्री रमाबाई को 'वागीश्वरी' कहा गया है, वह भी अपने संगीत प्रेम के कारण प्रसिद्ध रही है।

कवि मेहा महाराणा कुम्भा के समय का एक प्रतिष्ठित रचनाकार था। उसकी रचनाओं में 'तीर्थमाला' प्रसिद्ध है जिसमें 120 तीर्थों का वर्णन है। मेहा कुम्भा के समय के दो सबसे महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्यों कुम्भलगढ़ और रणकपुर जैन मंदिर के समय उपस्थित था। उसने बताया है कि हनुमान की जो मूर्तियां सोजत और नागौर से लाई गई थी, उन्हें कुम्भलगढ़ और रणकपुर में स्थापित किया गया। रणकपुर जैन मंदिर के प्रतिष्ठा समारोह में भी मेहा स्वयं उपस्थित हुआ था। हीरानन्द मुनि को कुम्भा अपना गुरु मानते थे और उन्हें 'कविराज' की उपाधि दी।

कविराज श्यामलदास की रचना 'वीर विनोद' के अनुसार मेवाड़ के कुल 84 दुर्गों में से अकेले महाराणा कुम्भा ने 32 दुर्गों का निर्माण करवाया। अपने राज्य की पश्चिमी सीमा व

तंग रास्तों को सुरक्षित रखने के लिए नाकाबंदी की और सिरोही के निकट बसन्ती का दुर्ग बनवाया। मेरों के प्रभाव को रोकने के लिए मचान के दुर्ग का निर्माण करवाया। केन्द्रीय शक्ति को पश्चिमी क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली बनाने व सीमान्त भागों को सैनिक सहायता पहुँचाने के लिए 1452 ई. में परमारों के प्राचीन दुर्ग के अवशेषों पर अचलगढ़ का पुनर्निर्माण करवाया। कुम्भा द्वारा निर्मित कुम्भलगढ़ दुर्ग का परकोटा 36 किमी. लम्बा है जो चीन की दीवार के बाद विश्व की सबसे लम्बी दिवार मानी जाती है। रणकपुर (पाली) का प्रसिद्ध जैन मंदिर महाराणा कुम्भा के समय में ही धारणक शाह द्वारा बनवाया गया था।

कुम्भा को अपने अंतिम दिनों में उन्माद का रोग हो गया था और वह अपना अधिकांश समय कुम्भलगढ़ दुर्ग में ही बीताता था। यहीं पर उसके सत्तालोलुप पुत्र उदा ने 1468 ई. में उसकी हत्या कर दी।

चित्तौडगढ़ दुर्ग

कुम्भलगढ़दुर्ग

कुम्भलगढ़ शिलालेख में उसे 'धर्म और पवित्रता का अवतार' तथा दानी राजा भोज व कर्ण से बढ़कर बताया गया है। वह निष्ठावान वैष्णव था और यशस्वी गुप्त सम्राटों के समान स्वयं को 'परमभागवत्' कहा करता था। उसने आदिवाराह की उपाधि भी अंगीकार की थी –'वसुंधरोद्धरणादिवराहेण'(विष्णु के प्राथमिक अवतार वाराह के समान वैदिक व्यवस्था का पुनर्संस्थापक)।

विजय स्तम्भ – चित्तौड़ दुर्ग के भीतर स्थित नौ मंजिले और 122 फीट ऊँचे विजय स्तम्भ का निर्माण महाराणा कुम्भा ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी पर विजय की स्मृति में करवाया। इसका निर्माण प्रधान शिल्पी जैता व उसके तीन पुत्रों – नापा, पोमा और पूंजा की देखरेख में हुआ। अनेक हिन्दू देवी–देवताओं की कलात्मक प्रतिमायें उत्कीर्ण होने के कारण विजय स्तम्भ को 'पौराणिक हिन्दू मूर्तिकला का अनमोल खजाना' (भारतीय मूर्तिकला का विश्वकोष) कहा जाता है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने इसे 'हिन्दू देवी–देवताओं से सजाया हुआ एक व्यवस्थित संग्रहालय' तथा गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'पौराणिक देवताओं के अमूल्य कोष' की संज्ञा दी है। मुख्य द्वार पर भगवान विष्णु की प्रतिमा होने के कारण विजय स्तम्भ को 'विष्णु ध्वज' भी कहा जाता है। महाराणा स्वरूपसिंह (1842–61 ई.) के काल में इसका पुनर्निर्माण करवाया गया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान विजय स्तम्भ ने क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा स्रोत का कार्य किया। प्रसिद्ध क्रांतिकारी संगठन 'अभिनव भारत समिति' के संविधान के अनुसार प्रत्येक नए सदस्य को मुक्ति संग्राम से जुड़ने के लिए विजय स्तम्भ के नीचे शपथ लेनी पड़ती थी।

महाराणा कुम्भा

विजय स्तम्भ

मुगल आक्रमण

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना 1526 ई. में बाबर द्वारा की गई। उसका जन्म 1483 ई. में फरगना नामक स्थान पर हुआ था। पिता उमर शेख मिर्जा की ओर से वह तैमूर का पाँचवाँ वंशज तथा माता कुतलुगनिगार खानम की ओर से चंगेजखा का चौदहवाँ वंशज था। इस प्रकार उसकी रगों में मध्य एशिया के दो महान् विजेताओं का रक्त दौड़ रहा था। (चंगेजखाँ हान वंश का मंगोल था। मंगोलों ने इस्लाम को अपना लिया और मंगोल मुगल कहलाए।) 1494 ई. में अपने पिता की असामयिक मृत्यु के बाद बाबर मात्र 11 वर्ष की आयु में फरगाना के पैतृक राज्य का उत्तराधिकारी बना किन्तु परिस्थितियोंवश उसका शासन वहाँ स्थायी नहीं रह पाया। अंततः स्थायी शासन के लिए उसने भारत

पर अधिकार करने का निर्णय लिया। उसके आक्रमण के समय भारत का सबसे शक्तिशाली शासक मेवाड़ का महाराणा सांगा था, जो इतिहास में महाराणा संग्रामसिंह प्रथम के नाम से प्रसिद्ध है।

महाराणा सांगा (1509–1528 ई.)

सांगा अपने पिता महाराणा रायमल की मृत्यु के बाद 1509 ई. में 27 वर्ष की आयु में मेवाड़ का शासक बना। मेवाड़ के महाराणाओं में वह सबसे अधिक प्रतापी योद्धा था।

उत्तराधिकार के लिए संघर्ष – रायमल के जीवनकाल में ही सत्ता के लिए पुत्रों के बीच आपसी संघर्ष प्रारम्भ हो गया। कहा जाता है कि एक बार कुंवर पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह ने अपनी–अपनी जन्मपत्रियाँ एक ज्योतिषी को दिखलाई। उन्हें देखकर उसने कहा कि ग्रह तो पृथ्वीराज और जयमल के भी अच्छे हैं परन्तु राजयोग संग्रामसिंह के पक्ष में होने के कारण मेवाड़ का स्वामी वही होगा। यह सुनते ही दोनों भाई संग्रामसिंह पर टूट पड़े। पृथ्वीराज ने हूल मारी जिससे संग्रामसिंह की एक

महाराणा सांगा

महाराणा उदयसिंह

आंख फूट गई। इस समय तो सारंगदेव (महाराणा रायमल के चाचा) ने बीच–बचाव कर किसी तरह उन्हें शांत किया, किन्तु दिनों–दिन कुंवरों में विरोध का भाव बढ़ता ही गया। सारंगदेव ने उन्हें समझाया कि ज्योतिषी के कथन पर विश्वास कर तुम्हें आपस में संघर्ष नहीं करना चाहिये।

इस समय सांगा अपने भाइयों के डर से श्रीनगर (अजमेर) के कर्मचन्द पंवार के पास अज्ञातवास बिता रहा था। रायमल ने उसे बुलाकर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

गुजरात के सुल्तान के साथ संघर्ष – सांगा के समय गुजरात और मेवाड़ के बीच संघर्ष का तात्कालीक कारण ईडर का प्रश्न था। ईडर के राव भाण के दो पुत्र सूर्यमल और भीम थे। राव भाण की मृत्यु के बाद सूर्यमल गद्दी पर बैठा किन्तु उसकी भी 18 माह बाद ही मृत्यु हो गई। अब सूर्यमल के स्थान पर उसका बेटा रायमल ईडर की गद्दी पर बैठा। रायमल के अल्पायु होने का लाभ उठाकर उसके चाचा भीम ने गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। रायमल ने मेवाड़ में शरण ली, जहाँ महाराणा सांगा ने अपनी पुत्री की सगाई उसके साथ कर दी। 1515 ई. में रायमल ने महाराणा सांगा की सहायता से भीम के पुत्र भारमल को हटाकर ईडर पर पुनः अधिकार कर लिया।

भारमल को हटाकर रायमल को ईडर का शासक बनाए जाने से गुजरात का सुल्तान मुजफ्फर बहुत अप्रसन्न हुआ क्योंकि भीम ने उसी की आज्ञानुसार ईडर पर अधिकार किया था। नाराज सुल्तान मुजफ्फर ने अहमदनगर के जागीरदार निजामुल्मुल्क को आदेश दिया कि वह रायमल को हटाकर भारमल को पुनः ईडर की गद्दी पर बैठा दे। निजामुल्मुल्क द्वारा ईडर पर घेरा डालने पर रायमल पहाड़ों में चला गया और पीछा करने पर निजामुल्मुल्क को पराजित किया। ईडर के आगे रायमल का अनावश्यक पीछा किए जाने से नाराज सुल्तान ने निजामुल्मुल्क को वापिस बुला लिया। इसके बाद सुल्तान द्वारा मुवारिजुल्मुल्क को ईडर का हाकिम नियुक्त किया गया। एक भाट के सामने एक दिन मुवारिजुल्मुल्क ने सांगा की तुलना एक कुत्ते से कर दी। यह जानकारी मिलने पर सांगा वागड़ के राजा उदयसिंह के साथ ईडर जा पहुँचा। पर्याप्त सैनिक न होने के कारण मुवारिजुल्मुल्क ईडर छोड़कर अहमदनगर भाग गया। सांगा ने ईडर की गद्दी पर रायमल को बैठा दिया और अहमदनगर, बड़गनर, वीसलनगर आदि स्थानों को लूटता हुआ चित्तौड़ लौट आया।

सांगा के आक्रमण से हुई बर्बादी का बदला लेने के लिए सुल्तान मुजफ्फर ने 1520 ई. में मलिक अयाज तथा किवामुल्मुल्क की अध्यक्षता में दो अलग–अलग सेनाएं मेवाड़ पर आक्रमण के लिए भेजी। मालवा का सुल्तान महमूद भी इस सेना के साथ आ मिला किन्तु मुस्लिम अफसरों में अनबन के कारण मलिक अयाज आगे नहीं बढ़ सका और संधि कर उसे वापिस लौटना पड़ा।

दिल्ली सल्तनत के साथ संघर्ष – सांगा ने सिकन्दर लोदी के समय ही दिल्ली के अधीनस्थ इलाकों पर अधिकार करना शुरू कर दिया था किन्तु अपने राज्य की निर्बलता के कारण वह महाराणा के साथ संघर्ष के लिए तैयार नहीं हो सका। सिकन्दर लोदी के उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी ने 1517 ई. में मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। खातोली (कोटा) नामक स्थान पर दोनों पक्षों के बीच युद्ध हुआ जिसमें सांगा की विजयी हुई। सुल्तान युद्ध के मैदान से भाग निकलने में सफल रहा किन्तु उसके एक शाहजादे को कैद कर लिया गया। इस युद्ध में तलवार से सांगा का बायां हाथ कट गया और घुटने पर तीर लगने से वह हमेशा के लिए लंगड़ा हो गया। खातोली की पराजय का बदला लेने के लिए 1518 ई. में इब्राहीम लोदी ने मियां माखन की अध्यक्षता में सांगा के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजी किन्तु सांगा ने बाड़ी (धौलपुर) नामक स्थान पर लड़े युद्ध गए में एक बार फिर शाही सेना को पराजित किया।

मलवा के साथ सम्बन्ध – मेदिनीराय नामक एक हिन्दू सामंत ने मालवा के अपदस्थ सुल्तान महमूद खिलजी द्वितीय को पुनः शासक बनाने में सफलता प्राप्त की थी। इस कारण सुल्तान महमूद ने उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। सुल्तान के मुस्लिम अमीरों को मेदिनीराय की बढ़ती हुई शक्ति से काफी ईर्ष्या हुई और उन्होंने सुल्तान को उसके विरुद्ध बरगलाने में सफलता प्राप्त कर ली। मेदिनीराय महाराणा सांगा की शरण में मेवाड़ आ गया, जहाँ उसे गागरोण व चंदेरी की जागीरें दे दी गई। 1519 ई. में सुल्तान महमूद मेदिनीराय पर आक्रमण के लिए

रवाना हुआ। इस बात की खबर लगते ही सांगा भी एक बड़ी सेना के साथ गागरोण पहुँच गया। यहाँ हुई लड़ाई में सुल्तान की बुरी तरह पराजय हुई। सुल्तान का पुत्र आसफखां इस युद्ध में मारा गया तथा वह स्वयं घायल हुआ। सांगा सुल्तान को अपने साथ चित्तौड़ ले गया, जहाँ उसे तीन माह कैद रखा गया।

एक दिन महाराणा सांगा सुल्तान को एक गुलदस्ता देने लगा। इस पर उसने कहा कि किसी चीज के देने के दो तरीके होते हैं। एक तो अपना हाथ ऊँचा कर अपने से छोटे को देवें या अपना हाथ नीचा कर बड़े को नजर करें। मैं तो आपका कैदी हूँ इसलिए यहाँ नजर का तो कोई सवाल ही नहीं और भिखारी की तरह केवल इस गुलदस्ते के लिए हाथ पसारना मुझे शोभा नहीं देता। यह उत्तर सुनकर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और गुलदस्ते के साथ सुल्तान को मालवा का आधा राज्य सौंप दिया। सुल्तान ने अधीनता के चिह्नस्वरूप रत्नजटित मुकुट तथा सोने की कमरपेटी महाराणा को सौंप दिये। आगे के अच्छे व्यवहार के लिए महाराणा ने सुल्तान के एक शाहजादे को जमानत के तौर पर चित्तौड़ रख लिया। महाराणा के इस उदार व्यवहार की मुस्लिम इतिहासकारों ने काफी प्रशंसा की है किन्तु राज्य के लिए यह नीति हानिकारक रही।

बाबर और सांगा– पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) में इब्राहीम लोदी को पराजित कर बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। शीघ्र ही बाबर और सांगा के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो गया जिसके निम्नलिखित कारण थे :–

1. सांगा पर वचनभंग का आरोप– तुर्की भाषा में लिखी अपनी आत्मकथा 'तुजुक–ए–बाबरी' में बाबर ने लिखा है कि 'सांगा ने काबुल में मेरे पास दूत भेजकर दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए कहा, उसी समय सांगा ने स्वयं आगरा पर हमला करने का वायदा किया था किन्तु सांगा अपने वचन पर नहीं रहा। मैंने दिल्ली और आगरा पर अधिकार जमा लिया तो भी सांगा की तरफ से हिलने का कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं हुआ।' सांगा पूर्व में इब्राहीम लोदी को अकेला ही दो बार पराजित कर चुका था, ऐसे में उसके विरुद्ध काबुल से बाबर को भारत आमन्त्रित करने का आरोप तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

2. महत्त्वकांक्षाओं का टकराव– बाबर की इब्राहीम लोदी पर विजय के बाद सम्पूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। 'हिन्दूपत' (हिन्दू प्रमुख) सांगा को पराजित किए बिना ऐसा संभव नहीं था। दोनों का उत्तरी भारत में एक साथ बने रहना ठीक वैसा ही था जैसे एक म्यान में दो तलवारें।

3. राजपूत–अफगान मैत्री– यद्यपि पानीपत के प्रथम युद्ध में अफगान पराजित हो गए थे किन्तु वे बाबर को भारत से बाहर निकालने के लिए प्रयासरत थे। इस कार्य के लिए सांगा को उपयुक्त पात्र समझकर अफगानों के नेता हसनखां मेवाती और मृतक सुल्तान इब्राहीम लोदी का भाई महमूद लोदी उसकी शरण में पहुँच गए। राजपूत–अफगान मोर्चा बाबर के लिए भय का कारण बन गया। अतः उसने सांगा की शक्ति को नष्ट करने का फैसला कर लिया।

4. सांगा द्वारा सल्तनत के क्षेत्रों पर अधिकार करना– पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी की पराजय से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए सांगा ने खण्डार दुर्ग (रणथम्भौर के पास) व उसके निकटवर्ती 200 गांवों को अधिकृत कर लिया जिससे वहाँ के मुस्लिम परिवारों को पलायन करना पड़ा।

दोनों शासकों ने भावी संघर्ष को देखते हुए अपनी–अपनी स्थिति सुदृढ़ करनी प्रारम्भ कर दी। मुगल सेनाओं ने बयाना, धौलपुर और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया जिससे बाबर की शक्ति में वृद्धि हुई। इधर सांगा के निमन्त्रण पर अफगान नेता हसनखां मेवाती और महमूद लोदी, मारवाड़ का मालदेव, आमेर का पृथ्वीराज, ईडर का राजा भारमल, वीरमदेव मेड़तिया, वागड़ का रावल उदयसिंह, सलूम्बर का रावत रत्नसिंह, चंदेरी का मेदिनीराय, सादड़ी का झाला अज्जा, देवलिया का रावत बाघसिंह और बीकानेर का कुंवर कल्याणमल ससैन्य आ डटे।

फरवरी 1527 ई. में सांगा रणथम्भौर से बयाना पहुँच गया, जहाँ इस समय बाबर की तरफ से मेंहदी ख्वाजा दुर्ग रक्षक के रूप में तैनात था। सांगा ने दुर्ग को घेर लिया जिससे दुर्ग में स्थित मुगल सेना की स्थिति काफी खराब हो गई। बाबर ने बयाना की रक्षा के लिए मोहम्मद सुल्तान मिर्जा की अध्यक्षता में एक सेना भेजी किन्तु राजपूतों ने उसे खदेड़ दिया। अंततः बयाना पर सांगा का अधिकार हो गया। बयाना विजय बाबर के विरुद्ध सांगा की एक महत्त्वपूर्ण विजय थी।

इधर बाबर युद्ध की तैयारियों में जुटा था किन्तु महाराणा की तीव्रगति, बयाना की लड़ाई और वहाँ से लौटे हुए शाहमंसूर किस्मती आदि से राजपूतों की वीरता की प्रशंसा सुनकर चिंतित हो गया। इसी समय एक मुस्लिम ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ ने भविष्यवाणी की कि 'मंगल का तारा पश्चिम में है, इसलिए पूर्व से लड़ने वाले पराजित होंगे।' बाबर की सेना की स्थिति पूर्व में ही थी। चारों तरफ निराशा का वातावरण देख बाबर ने अपने सैनिकों को उत्साहित करने के लिए कभी शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और शराब पीने की कीमती सुराहियां व प्याले तुड़वाकर गरीबों में बांट दिये। सैनिकों के मजहबी भावों को उत्तेजित करने के लिए उसने कहा "सरदारों और सिपाहियों! प्रत्येक मनुष्य, जो संसार में आता है, अवश्य मरता है। जब हम चले जायेंगे तब एक खुदा ही बाकी रहेगा। जो कोई जीवन का भोग करने बैठेगा, उसको अवश्य मरना भी होगा। जो इस संसाररूपी सराय में आता है, उसे एक दिन यहाँ से विदा भी होना पड़ता है। इसलिए बदनाम होकर जीने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना अच्छा है। मैं भी यही चाहता हूँ कि कीर्ति के साथ मृत्यु हो तो अच्छा होगा, शरीर तो नाशवान् है। खुदा ने हम पर बड़ी कृपा की है कि इस लड़ाई में हम मरेंगे तो शहीद होंगे और जीतेंगे तो गाजी कहलायेंगे। इसलिए सबको कुरान हाथ में लेकर कसम खानी चाहिए कि प्राण रहते कोई भी युद्ध में पीठ दिखाने का विचार न करे।" इसके साथ ही बाबर ने रायसेन के सरदार सलहदी तंवर के माध्यम से सुलह की बात भी चलाई। महाराणा ने इस प्रस्ताव पर अपने सरदारों से बात की किन्तु सरदारों को सलहदी की मध्यस्थता पसंद नहीं आई। इसलिए उन्होंने अपनी सेना की प्रबलता और बाबर की निर्बलता प्रकट कर संधि की बात बनने न दी। संधि वार्ता का लाभ उठाते हुए बाबर तेजी से अपनी तैयारी करता रहा और खानवा के मैदान में आ डटा।

कविराज श्यामलदास कृत 'वीर विनोद' के अनुसार 16 मार्च 1527 ई. को सुबह खानवा (भरतपुर) के मैदान में युद्ध प्रारम्भ हुआ। पहली मुठभेड़ में बाजी राजपूतों के हाथ लगी किन्तु अचानक सांगा के सिर में एक तीर लगने के कारण उसे युद्ध भूमि से हटाना पड़ा। युद्ध संचालन के लिए अब सरदारों ने सलूम्बर के रावत रत्नसिंह चूण्डावत से सैन्य संचालन के लिए प्रार्थना की। रत्नसिंह ने यह कहते हुए उक्त प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया कि मेरे पूर्वज मेवाड़ का राज्य छोड़ चुके हैं इसलिए मैं एक क्षण के लिए भी राज्य चिह्न धारण नहीं कर सकता परन्तु जो कोई राज्यछत्र धारण करेगा, उसकी पूर्ण रूप से सहायता करूंगा और प्राण रहने तक शत्रु से लड़ूंगा। इसके बाद झाला अज्जा को हाथी पर बिठा कर युद्ध जारी रखा गया। राजपूतों ने अंतिम दम तक लड़ने का निश्चय किया किन्तु बाबर की सेना के सामने उनकी एक न चली और उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा। विजय के बाद बाबर ने गाजी की पदवी धारण की और विजय–चिह्न के रूप में राजपूत सैनिकों के सिरों की एक मीनार बनवाई।

सांगा की पराजय के कारण

1. इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार सांगा की पराजय का मुख्य कारण बयाना विजय के तुरन्त बाद ही युद्ध न करके बाबर को तैयारी करने का पूरा समय देना था। लम्बे समय तक युद्ध को स्थगित रखना महाराणा की बहुत बड़ी भूल सिद्ध हुई। महाराणा के विभिन्न सरदार देशप्रेम के भाव से इस युद्ध में शामिल नहीं हो रहे थे। सभी के अलग–अलग स्वार्थ थे, यहाँ तक कि कईयों में तो परस्पर शत्रुता भी थी। संधि वार्ताओं के कारण कई दिन शांत बैठे रहने से उनमें युद्ध के प्रति वह जोश व उत्साह नहीं रहा जो युद्ध के लिए रवाना होते समय था।

2. राजपूत सैनिक परम्परागत हथियारों से युद्ध लड़ रहे थे। वे तीर–कमान, भालों व तलवारों से बाबर की तोपों के गोलों का मुकाबला नहीं कर सकते थे।

3. हाथी पर सवार होकर भी सांगा ने बड़ी भूल की क्योंकि इससे शत्रु को उस पर ठीक निशाना लगाकर घायल करने का मौका मिला। उसके युद्ध भूमि से बाहर जाने से सेना का मनोबल कमजोर हुआ।

4. राजपूत सेना में एकता और तालमेल का अभाव था क्योंकि सम्पूर्ण सेना अलग–अलग सरदारों के नेतृत्व में एकत्रित हुई थी।

5. अपनी गतिशीलता के कारण राजपूतों की हस्ति सेना पर बाबर की अश्व सेना भारी पड़ी। बाबर की तोपों के गोलों से भयभीत हाथियों ने पीछे लौटते समय अपनी ही सेना को रौंद कर नुकसान पहुँचाया।

खानवा युद्ध के परिणाम

1. भारत में राजपूतों की सर्वोच्चता का अंत हो गया। राजपूतों का वह प्रताप–सूर्य जो भारत के गगन के उच्च स्थान पर पहुँच कर लोगों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा था, अब अस्तांचल की ओर खिसकने लगा।

2. मेवाड़ की प्रतिष्ठा और शक्ति के कारण निर्मित राजपूत संगठन इस पराजय के साथ ही समाप्त हो गया।

3. भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य स्थापित हो गया और बाबर स्थिर रूप से भारत का बादशाह बन गया।

अंतिम दिन– खानवा के युद्ध के बाद मूर्छित सांगा को बसवा ले जाया गया। होश आने पर सारा वृतांत जानकर सांगा काफी दुःखी हुआ और युद्ध स्थल से इतनी दूर लाने के लिए अपने सरदारों को भला–बुरा कहा। बाबर से अपनी पराजय का बदला लेने के लिए जब सांगा चंदेरी जा रहा था तब मार्ग में इरिच नामक स्थान पर उसके युद्ध विरोधी सरदारों ने जहर दे दिया। विष का प्रभाव होने पर कालपी नामक स्थान पर 30 जनवरी 1528 ई. को मात्र 46 वर्ष की आयु में सांगा का देहान्त हो गया। अमरकाव्य वंशावली के अनुसार सांगा का अंतिम संस्कार माण्डलगढ़ में किया गया।

मूल्यांकन– महाराणा सांगा वीर, उदार, कृतज्ञ, बुद्धिमान और न्यायपरायण शासक था। अपने शत्रु को कैद करके छोड़ देना और राज्य वापिस लौटा देने का कार्य सांगा जैसा वीर पुरुष ही कर सकता था। प्रारम्भ से ही विपत्तियों में पलने के कारण वह एक साहसी वीर योद्धा बन गया था। अपने भाई पृथ्वीराज के साथ झगड़े में उसकी एक आंख फूट गई, इब्राहीम लोदी के साथ हुए खातोली के युद्ध में उसका हाथ कट गया और एक पैर से वह लंगड़ा हो गया। मृत्यु समय तक उसके शरीर पर तलवारों व भालों के कम से कम 80 निशान लगे हुए थे जो उसे 'एक सैनिक का भग्नावशेष' सिद्ध कर रहे थे। शायद ही उसके शरीर का कोई अंश ऐसा हो जिस पर युद्धों में लगे हुए घावों के चिह्न न हो। अपने पुरुषार्थ द्वारा सांगा ने मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। अपने समय का वह सबसे बड़ा हिन्दू नरेश था जिसके आगे बड़े–बड़े शासक सिर झुकाते थे। जोधपुर और आमेर के राज्य भी उसका सम्मान करते थे। ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, कालपी, चन्देरी, बूंदी, गागरोन, रामपुरा और आबू के राजा उसके सामंत थे। वह भारत का अंतिम नरेश था जिसके नेतृत्व में राजपूत नरेश विदेशियों को भारत से निकालने के लिए इकट्ठे हुए थे। बाबर ने उसकी प्रशंसा में लिखा है कि "राणा सांगा अपनी बहादुरी और तलवार के बल पर बहुत बड़ा हो गया था। मालवा, दिल्ली और गुजरात का कोई अकेला सुल्तान उसे हराने में असमर्थ था। उसके राज्य की वार्षिक आय दस करोड़ थी। उसकी सेना में एक लाख सैनिक थे। उसके साथ 7 राजा, 9 राव और 104 छोटे सरदार रहा करते थे।" आपसी वैमनस्य के लिए प्रसिद्ध राजपूत शासकों को एक झण्डे के नीचे लाना सांगा की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

सांगा धर्म और राजनीति के बड़े मर्मज्ञ थे। अंगहीन होने पर एक बार उन्होंने अपने सरदारों के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि 'जिस प्रकार एक टूटी हुई मूर्ति पूजने योग्य नहीं रहती, उसी प्रकार मेरी आंख, भुजा और पैर अयोग्य होने के कारण मैं सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं हूँ। इस स्थान पर जिसे उचित समझें, बैठावें। राणा के इस विनीत व्यवहार से सरदार बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि रणक्षेत्र में अंग–भंग होने से राजा का गौरव घटता नहीं अपितु बढ़ता है।' महमूद खिलजी को गिरफ्तार करने की खुशी में सांगा ने चारण हरिदास को चित्तौड़ का सम्पूर्ण राज्य दे दिया था, किन्तु हरिदास ने सम्पूर्ण राज्य न

लेकर 12 गांवों में ही अपनी खुशी प्रकट की।

एक बड़ा राज्य स्थिर करने वाला होने के बावजूद भी सांगा को राजनीति में अधिक निपुण नहीं कहा जा सकता। अपने शत्रु को पकड़कर छोड़ देना उदारता की दृष्टि भले ही उत्तम कार्य हो परन्तु राजनीति के विचार से बुरा ही था। इसी तरह गुजरात के सुल्तान को हराकर उसके इलाकों पर अधिकार न करना भी उसकी भूल थी। अपने छोटे लड़कों को रणथम्भौर जैसी बड़ी जागीर देकर उसने भविष्य के लिए कांटा बो दिया। राणा की विशेष प्रीतिपात्रा होने के कारण हाड़ी रानी कर्मावती ने अपने दोनों पुत्रों विक्रमादित्य और उदयसिंह के लिए रणथम्भौर की जागीर लेकर अपने भाई सूरजमल हाड़ा को उनका संरक्षक नियुक्त करवा लिया था।

राव चन्द्रसेन (1562–1581 ई.)

राव चन्द्रसेन जोधपुर के प्रसिद्ध शासक राव मालदेव (1532–62 ई.) के कनिष्ठ पुत्र थे। राव मालदेव के समय दिल्ली के शासक शेरशाह सूरी ने मारवाड़ पर आक्रमण किया था। दोनों पक्षों के बीच 1544 ई. में लड़े गए गिरी–सुमेल (पाली) युद्ध में छल–कपट के सहारे शेरशाह जीत हासिल करने में सफल रहा किन्तु राव मालदेव के पराक्रमी सेनापतियों जैता और कूंपा ने युद्ध के दौरान उसे ऐसी कड़ी टक्कर दी कि इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार शेरशाह अपने घोड़े से नीचे उतर कर सफलता के लिए अल्लाह से दुआ मांगने लगा। शेरशाह के भय का पता उसकी इस स्वीकारोक्ति से चलता है, जिसमें उसने युद्ध के बाद कहा था कि 'मैं एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दूस्तान की बादशाहत खो बैठता।'

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार चन्द्रसेन का जन्म 1541 ई. में हुआ। राव मालदेव अपने ज्येष्ठ पुत्र राम से अप्रसन्न था, जबकि उससे छोटे पुत्र उदयसिंह को पटरानी स्वरूपदे (चन्द्रसेन की माँ) ने राज्याधिकार से वंचित करवा दिया। इस कारण मालदेव की मृत्यु के बाद उसकी इच्छानुसार 31 दिसम्बर 1562 ई. को चन्द्रसेन जोधपुर की गद्दी पर बैठा। मालदेव के काल में उसे बीसलपुर और सिवाना की जागीर मिली हुई थी।

आन्तरिक विद्रोह का दमन– शासक बनने के कुछ ही समय बाद चन्द्रसेन ने आवेश में आकर अपने एक चाकर की हत्या कर दी। इससे जैतमाल और उससे मेल रखने वाले कुछ अन्य सरदार अप्रसन्न हो गए। नाराज सरदारों ने चन्द्रसेन को दण्डित करने के लिए उसके विरोधी भाइयों राम, उदयसिंह और रायमल के साथ गठबंधन कर उन्हें आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया। राम ने सोजत और रायमल ने दूनाड़ा प्रान्त में उपद्रव शुरू कर दिया तथा उदयसिंह ने गांगाणी और बावड़ी पर अधिकार कर लिया। सूचना मिलते ही चन्द्रसेन ने इन उपद्रवों को शांत करने के लिए अपनी सेना भेजी जिससे राम और रायमल तो अपनी–अपनी जागीरों में लौट गए किन्तु उदयसिंह ने लोहावट नामक स्थान पर संघर्ष किया। इस युद्ध में उदयसिंह घायल हुआ और चन्द्रसेन विजयी रहा। 1563 ई. में राव चन्द्रसेन और उदयसिंह की सेनाओं के बीच नाडोल नामक स्थान पर पुनः संघर्ष हुआ किन्तु विजय की आशा न देखकर उदयसिंह बादशाह अकबर के पास चला गया।

जोधपुर पर मुगलों का अधिकार– राव चन्द्रसेन के नाराज भइयों राम, उदयसिंह व रायमल के साथ आपसी कलह के कारण अकबर को हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया। उसने शीघ्र ही हुसैनकुली खां की अध्यक्षता में एक सेना भेजी जिसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। जोधपुर की ख्यात में मुगल अभियान का अतिरंजित वर्णन करते हुए कहा गया है कि शाही सेना ने जोधपुर पर तीन बार हमला किया और लगभग दस माह के घेरे के बाद चन्द्रसेन को अन्न–जल की कमी के कारण गढ़ का परित्याग कर भाद्राजूण जाना पड़ा। जोधपुर हाथ से निकलने के बाद चन्द्रसेन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी और वह अपने रत्न आदि बेचकर खर्च चलाने लगा।

पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने अकबर द्वारा जोधपुर पर आक्रमण का प्रमुख कारण जोधपुर के राव मालदेव द्वारा उसके पिता हुमायूं के प्रति किए गए असहयोग को माना है।

नगौर दरबार– 1570 ई. में अपनी अजमेर यात्रा के समय अकबर मारवाड़ क्षेत्र में दुष्काल की खबरें सुनकर नागौर पहुंचा। इस अवसर पर उसने अपने सैनिकों से दुष्काल निवारणार्थ एक तालाब खुदवाया, जो 'शुक्र तालाब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वास्तव में इस दरबार का उद्देश्य मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करना था।

चन्द्रसेन के खिलाफ मुगल अभियान– नागौर दरबार के कुछ समय बाद मुगल सेना ने भाद्राजूण पर आक्रमण कर दिया। फरवरी 1571 ई. में चन्द्रसेन भाद्राजूण का परित्याग कर सिवाणा की तरफ चला गया। 1572 ई. में एक तरफ जहाँ गुजरात में विद्रोह फैला हुआ था, वहीं दूसरी तरफ महाराणा प्रताप के शासक बनने से मेवाड़ के भी आक्रामक होने का खतरा पैदा हो गया। ऐसी स्थिति में अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का शासक बनाकर गुजरात की तरफ भेजा ताकि महाराणा प्रताप गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुँचा सके।

1573 ई. में अकबर ने चन्द्रसेन को अपने अधीन बनाने के लिए शाहकुली खाँ के साथ जगतसिंह, केशवदास मेड़तिया, बीकानेर के रायसिंह आदि को भेजा। यह सेना सोजत में चन्द्रसेन के भतीजे कल्ला को पराजित करते हुए सिवाना पहुँची। अपने सेनानायकों के परामर्श के अनुसार चन्द्रसेन किले की रक्षा का भार पत्ता राठौड़ को सौंपकर पहाड़ों में चला गया और वहीं से किले को घेरने वाली मुगल सेना के पार्श्वों पर छापामार पद्धति से आक्रमण कर उसे क्षति पहुँचाने लगा। पत्ता राठौड़ और चन्द्रसेन के सम्मिलित सफल प्रतिरोध के कारण रायसिंह ने अकबर से अतिरिक्त सैन्य सहायता की मांग की। अकबर की तरफ से एक बड़ी सेना भेजे जाने पर चन्द्रसेन पहाड़ों में चला गया। यद्यपि मुगल सेना ने उसका पीछा किया किन्तु चन्द्रसेन को पकड़ने में वह असफल रही। इस असफलता से निराश अकबर ने अपने अमीरों को कड़ी फटकार लगाई।

चन्द्रसेन को अपने अधीन बनाने के लिए अकबर ने 1575 ई. में जलाल खाँ के नेतृत्व में सिवाना की तरफ एक बड़ी सेना भेजी जिसमें सैयद अहमद, सैयद हाशिम, शिमाल खाँ आदि अमीर भी शामिल थे। लम्बे संघर्ष के दौरान एक दिन अवसर

पाकर चन्द्रसेन ने अपने सहयोगी देवीदास के साथ मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में जलाल खाँ मारा गया। इस घटना से शाही सेना की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। अब अकबर ने शाहबाज खां को भेजा। उसने शीघ्र ही देवकोर और दूनाड़ा पर अधिकार कर सिवाना को घेर लिया। खाद्य सामग्री समाप्त होने के कारण सिवाना दुर्ग के रक्षक को किला छोड़ना पड़ा। इस प्रकार 1575 ई. में सिवाना के दुर्ग पर अकबर का अधिकार हो गया।

'संकटकालीन राजधानी' सिवाणा हाथ से निकलने के बाद अक्टूबर 1575 ई. में जैसलमेर के रावल हरराय ने पोकरण पर आक्रमण कर दिया। इस समय पोकरण में राव चन्द्रसेन की तरफ से किलेदार आनन्दराम पंचोली था। चार माह के घेरे के बाद रावल हरराय ने चन्द्रसेन के सामने प्रस्ताव रखा कि 'एक लाख फदिये के बदले मुझे पोकरण दे दो, जोधपुर पर अधिकार होने के बाद एक लाख फदिये लौटाकर पोकरण मुझसे वापिस ले लेना।' संकटापन्न आर्थिक दशा के कारण चन्द्रसेन ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर जनवरी 1576 ई. में पोकरण भाटियों को दे दिया।

पोकरण के रूप में अंतिम आश्रयस्थल भी हाथ से निकल जाने के उपरान्त भी चन्द्रसेन हताश नहीं हुआ। लगभग डेढ़–दो वर्ष तक सिरोही, डूंगरपुर और बांसवाड़ा में घूमते रहने के बाद 1579 ई. में चन्द्रसेन ने सरवाड़ के मुगल थाने को लूटकर अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद उसने अजमेर प्रांत पर भी धावे मारने शुरू कर दिये। यह समाचार मिलने पर बादशाह अकबर ने पायंदा मोहम्मद खाँ के नेतृत्व में सेना भेजी। चन्द्रसेन ने 1580 ई. में इस सेना का सामना किया किन्तु उसे असफल होकर पुनः पहाड़ों में लौटना पड़ा। कुछ दिनों बाद चन्द्रसेन ने सेना को पुनः संगठित किया और 7 जुलाई 1580 ई. को सोजत पर हमला कर दिया। सोजत पर अधिकार कर उसने सारण के पर्वतों में अपना निवास कायम किया। यहीं 11 जनवरी 1581 ई. को उसकी मृत्यु हो गई। जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार चन्द्रसेन के एक सामंत वैरसल ने विश्वासघात कर भोजन में जहर दे दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

राव चन्द्रसेन अकबरकालीन राजस्थान का प्रथम स्वतन्त्र प्रकृति का शासक था। उसके भाई शाही सत्ता का सुख भोगते रहे, वहीं उसे अपने रत्न–आभूषण बेचकर गुजारा चलाना पड़ा। चन्द्रसेन ने जोधपुर राज्य को छोड़कर रात–दिन पहाड़ों में घूमना और मुगल सेना से लड़ते रहना अंगीकार कर लिया किन्तु अधीनता स्वीकार नहीं की। संघर्ष की जो शुरूआत चन्द्रसेन ने की थी उसी राह पर आगे चलकर महाराणा प्रताप ने बड़ा नाम कमाया। इस कारण चन्द्रसेन को 'प्रताप का अग्रगामी' तथा 'मारवाड़ का प्रताप' भी कहा जाता है।

इतिहास में समुचित महत्व न मिलने के कारण चन्द्रसेन को 'मारवाड़ का भूला बिसरा नायक' कहा जाता है। चन्द्रसेन का नाम इतिहास में विस्मृत होने का प्रमुख कारण यही है कि एक तरफ प्रताप की मृत्यु के बाद जहाँ मेवाड़ का राज्य उनके पुत्र–पौत्रादि के हाथों में रहा, वहीं चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद मारवाड़ की गद्दी पर उसके भाई उदयसिंह का अधिकार हो गया। चन्द्रसेन और उदयसिंह के बीच विरोध चलता आया था।

चन्द्रसेन और प्रताप– राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप दोनों मुगल बादशाह अकबर के साथ आजीवन संघर्ष के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके बारे में कहा गया कि –

अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियो चीत।
सारे हिन्दुस्तान तणै सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत।।

(उस समय सारे हिन्दुस्तान में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो वीर ऐसे थे, जिन्होंने न तो अकबर की अधीनता स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही दाग लगने दिया तथा जिनके शस्त्र हमेशा ही मुगल–सम्राट के विरुद्ध चमकते रहे।)

चन्द्रसेन व प्रताप दोनों को अपने भाई–बन्धुओं के विरोध का सामना करना पड़ा। प्रताप की भांति चन्द्रसेन के अधिकार में मारवाड़ के कई भाग नहीं थे। मेवाड़ के माण्डलगढ़ और चित्तौड़ पर तो मारवाड़ के मेड़ता, नागौर, अजमेर आदि स्थानों पर मुगलों का अधिकार था। समानता के साथ दोनों शासकों की गतिविधियों में मूलभूत अन्तर भी पाया जाता है। दोनों शासकों ने अपने–अपने पहाड़ी क्षेत्रों में रहकर मुगलों को खूब छकाया किन्तु प्रताप के समान चन्द्रसेन चावंड जैसी कोई स्थायी राजधानी नहीं बसा पाया। विशेष अवसर पर चन्द्रसेन की उपस्थिति व मुगल सेना को विकेन्द्रित करने से प्रताप को सहयोग मिला।

महाराणा प्रताप (1572–1597 ई.)

अकबर द्वारा चित्तौड़ आक्रमण और जयमल–पत्ता का प्रतिरोध– मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के समय 23 अक्टूबर 1567 को अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। उदयसिंह के सेनापति जयमल और पत्ता ने लम्बे समय तक दुर्ग की रक्षा के लिए सफल प्रतिरोध किया किन्तु चार माह के लम्बे घेरे के बाद मुगल सेना बारूद की सहायता से दुर्ग की दीवार तोड़ने में सफल रही। प्रत्यक्ष संघर्ष में अकबर की बन्दूक से घायल होने के बावजूद जयमल ने अपने कुटुम्बी कल्ला के कंधों पर बैठकर शत्रु से लोहा लिया। जयमल और पत्ता की मृत्यु के बाद ही अकबर 25 फरवरी 1568 को चित्तौड़ पर अधिकार कर पाया।

इस सम्बन्ध में एक कहावत भी प्रचलित है–

भूख न मेटे मेड़तो, न मेटे नागोर।
रजवट भूख अनोखड़ी, मर्‌याँ मिटे चित्तौड़।।

अकबर इन दोनों योद्धाओं की वीरता से इतना मुग्ध हुआ कि आगरा के किले के प्रवेश द्वार पर उनकी गजारूढ़ प्रतिमायें स्थापित करवाई जिनको देखने का उल्लेख फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने अपने यात्रा वृत्तांत 'ट्रेवल्स इन द मुगल एम्पायर' में किया है। धर्मांध औरंगजेब के समय इन मूर्तियों को कालान्तर में हटवा दिया गया।

प्रारम्भिक जीवन व राज्यारोहण– महाराणा प्रताप का जन्म विक्रम संवत् 1597, ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया (9 मई, 1540 ई.) को कुम्भलगढ़ दुर्ग में हुआ। वे मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के जयेष्ठ पुत्र थे तथा उनकी माँ का नाम जैवन्ता बाई (जीवंत कंवर या जयवंती बाई) था। किन्तु उदयसिंह की एक अन्य रानी धीरकंवर थी। धीरकंवर अपने पुत्र जगमाल को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाने के लिए उदयसिंह को राजी करने में सफल रही। उदयसिंह की मृत्यु के बाद जगमाल ने स्वयं को मेवाड़ का

महाराणा घोषित कर दिया किन्तु सामन्तों ने प्रताप का समर्थन करते हुए उसे मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा दिया। इस प्रकार होली के त्यौंहार के दिन 28 फरवरी, 1572 ई. को गोगूंदा में महाराणा प्रताप का राजतिलक हुआ।

महाराणा प्रताप के राज्यारोहण के समय मेवाड़ की स्थितियाँ काफी खराब थी। मुगलों के साथ चलने वाले दीर्घकालीन युद्धों के कारण मेवाड़ की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो चुकी थी। चित्तौड़ सहित मेवाड़ के अधिकांश भागों पर मुगलों का अधिकार हो चुका था और अकबर मेवाड़ के बचे हुए क्षेत्र पर भी अपना अधिकार करना चाहता था। इस समय के चित्तौड़ के विध्वंस और उसकी दीन दशा को देखकर कवियों ने उसे 'आभूषण रहित विधवा स्त्री' की उपमा तक दे दी थी।

शासक बनने पर प्रताप ने आमेर, बीकानेर व जैसलमेर जैसी रियासतों की तरह अकबर की अधीनता स्वीकार न कर मातृभुमि की स्वधीनता को महत्त्व दिया और अपने वंश की प्रतिष्ठा के अनुकूल संघर्ष का मार्ग चुना। मेवाड़ पर मुगलों के आक्रमणों से प्रताप के अन्य सामंतों के साहस में कमी आने लगी। ऐसी स्थिति में प्रताप ने सब सामंतों को एकत्रित कर उनके सामने रघुकुल की मर्यादा की रक्षा करने और मेवाड़ को पूर्ण स्वतंत्र करने का विश्वास दिलाया और प्रतिज्ञा की कि जब तक मेवाड़ को स्वतंत्र नहीं करा लूंगा तब तक राज महलों में नहीं रहुंगा, पलंग पर नहीं सोऊंगा और पंच धातु (सोना, चांदी, तांबा और पीतल, काँसा) के बर्तनों में भोजन नहीं करूँगा। आत्मविश्वास के साथ मेवाड़ के स्वामीभक्त सरदारों तथा भीलों की सहायता से शक्तिशाली सेना का संगठन किया और मुगलों से अधिक दूर रहकर युद्ध का प्रबन्ध करने के लिए अपनी राजधानी गोगुन्दा से कुंभलगढ़ स्थानान्तरित की।

अकबर को प्रताप द्वारा मेवाड़ राज्य में उसकी सत्ता के विरुद्ध किए जा रहे प्रयत्नों की जानकारी मिलने लगी। अतः अकबर ने पहल करते हुए प्रताप के राज्यारोहण के वर्ष से ही उसे अधीनता स्वीकार करवाने के लिए एक के बाद एक चार दूत भेजे। महाराणा प्रताप के सिंहासन पर बैठने के छः माह बाद सितम्बर 1572 ई. में अकबर ने अपने अत्यन्त चतुर व वाक्पटु दरबारी जलाल खां कोरची के साथ संधि प्रस्ताव भेजा। अगले वर्ष अकबर ने प्रताप को अपने अधीन में करने के लिए क्रमशः तीन अन्य दरबारी – मानसिंह, भगवंतदास और टोडरमल भेजे किन्तु प्रताप किसी भी कीमत पर अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

हल्दीघाटी का युद्ध– मेवाड़ पर आक्रमण की योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मार्च 1576 ई. में अकबर स्वयं अजमेर जा पहुँचा।वहीं पर मानसिंह को मेवाड़ के विरूद्ध भेजी जाने वाली सेना का सेनानायक घोषित किया। 3 अप्रेल 1576 ई. को मानसिंह सेना लेकर मेवाड़ विजय के लिए चल पड़ा। दो माह माण्डलगढ़ में रहने के बाद अपने सैन्य बल में वृद्धि कर मानसिंह खमनौर गांव के पास आ पहुँचा। इस समय मानसिंह के साथ गाजीखां बदख्शी, ख्वाजा गयासुद्दीन अली, आसिफ खां, सैयद अहमद खां, सैयद हाशिम खां, जगन्नाथ कछवाह, सैयद राजू, मिहत्तर खां, भगवंतदास का भाई माधोसिंह, मुजाहिद बेग आदि सरदार उपस्थित थे। मुगल इतिहास में यह पहला अवसर था जब किसी हिन्दू को इतनी बड़ी सेना का सेनापति बना कर भेजा गया था। मानसिंह को मुगल सेना का प्रधान सेनापति बनाये जाने से मुस्लिम दरबारियों में नाराजगी फैल गई। बदायूंनी ने अपने संरक्षक नकीब खां से भी इस युद्ध में चलने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया कि "यदि इस सेना का सेनापति एक हिन्दू न होता, तो मैं पहला व्यक्ति होता जो इस युद्ध में शामिल होता।"

ग्वालियर के राजा रामशाह और पुराने अनुभवी यौद्धाओं ने राय दी कि मुगल सेना के अधिकांश सैनिकों को पर्वतीय भाग में लड़ने का अनुभव नहीं है। अतः उनको पहाड़ी भाग में घेर कर नष्ट कर देना चाहिए। किन्तु युवा वर्ग ने इस राय को चुनौती देते हुए इस बात पर जोर दिया कि मेवाड़ के बहादुरों को पहाड़ी भाग से बाहर निकल कर शत्रु सेना को खुले मैदान में पराजित करना चाहिए। अंत में मानसिंह ने बनास नदी के किनारे मोलेला में अपना शिविर स्थापित किया तथा प्रताप ने मानसिंह से छः मील दूर लोसिंग गांव में पड़ाव डाला।

मुगल सेना में हरावल (सेना का सबसे आगे वाला भाग) का नेतृत्व सैयद हाशिम कर रहा था। उसके साथ मुहम्मद बादख्शी रफी, राजा जगन्नाथ और आसफ खां थे। प्रताप की सेना के दो भाग थे, प्रताप की सेना के हरावल में हकीम खां सूरी, अपने पुत्रों सहित ग्वालियर का रामशाह, पुरोहित गोपीनाथ, शंकरदास, चारण जैसा, पुरोहित जगन्नाथ, सलूम्बर का चूड़ावत कृष्णदास, सरदारगढ़ का भीमसिंह, देवगढ़ का रावत सांगा, जयमल मेड़तिया का पुत्र रामदास आदि शामिल थे। दूसरे भाग का नेतृत्व सेना के केन्द्र में रह कर स्वयं महाराणा कर रहे थे, जिनके साथ भामाशाह व उनका भाई ताराचन्द था।

चेतक स्मारक

महाराणा प्रताप

18 जून 1576 प्रातःकाल प्रताप ने लोसिंग से हल्दीघाटी में गोगुन्दा की ओर बढ़ती सेना का सामना करने का निश्चय कर कूच किया। युद्ध के प्रथम भाग में मुगल सेना का बल तोड़ने के लिए राणा ने अपने हाथी लूना को आगे बढ़ाया जिसका मुकाबला मुगल हाथी गजमुख (गजमुक्ता) ने किया। गजमुख घायल होकर भागने ही वाला था कि लूना का महावत तीर लगने से घायल हो गया और लूना लौट पड़ा। इस पर महाराणा के विख्यात हाथी रामप्रसाद को मैदान में उतारना पड़ा।

युद्ध का प्रारम्भ प्रताप की हरावल सेना के भीषण आक्रमण से हुआ। मेवाड़ के सैनिकों ने अपने तेज हमले और वीरतापूर्ण युद्ध–कौशल द्वारा मुगल पक्ष की अग्रिम पंक्ति व बायें पार्श्व को छिन्न–भिन्न कर दिया। बदायूंनी के अनुसार इस हमले से घबराकर मुगल सेना लूणकरण के नेतृत्व में भेड़ों के झुण्ड की तरह भाग निकली। इस समय जब प्रताप के राजपूत सैनिकों और मुगल सेना के राजपूत सैनिकों के मध्य फर्क करना कठिन हो गया तो बदायूंनी ने यह बात मुगल सेना के दूसरे सेनापति आसफ खां से पूछी। आसफ खां ने कहा कि ''तुम तो तीर चलाते जाओ। राजपूत किसी भी ओर का मारा जाय, इससे इस्लाम का तो लाभ ही होगा।'' मानसिंह को मुगल सेना का सेनापति बनाने का बदायूंनी भी विरोधी था, किन्तु जब उसने मानसिंह को प्रताप के विरूद्ध बड़ी वीरता और चातुर्य से लड़ते देखा तो प्रसन्न हो गया।

युद्ध के दौरान सैयद हाशिम घोड़े से गिर गया और आसफ खां ने पीछे हटकर मुगल सेना के मध्य भाग में जाकर शरण ली। जगन्नाथ कछवाहा भी मारा जाता किन्तु उसकी सहायता के लिए चंदावल (सेना में सबसे पीछे की पंक्ति) से सैन्य टुकड़ी लेकर माधोसिंह कछवाहा आ गया। मुगल सेना के चंदावल में मिहतर खां के नेतृत्व में आपात स्थिति के लिए सुरक्षित सैनिक टुकड़ी रखी गई थी। अपनी सेना को भागते देख मिहतर खां आगे की ओर चिल्लाता हुआ आया कि ''बादशाह सलामत एक बड़ी सेना के साथ स्वयं आ रहे हैं।'' इसके बाद स्थिति बदल गई और भागती हुई मुगल सेना नये उत्साह और जोश के साथ लौट पड़ी।

राणा प्रताप अपने प्रसिद्ध घोड़े 'चेतक' पर सवार होकर लड़ रहा था और मानसिंह 'मरदाना' नामक हाथी पर सवार था। रणछोड़ भट्ट कृत संस्कृत ग्रंथ 'अमरकाव्य' में वर्णन है कि प्रताप ने बड़े वेग के साथ चेतक के अगले पैरों को मानसिंह के हाथी के मस्तक पर टिका दिया और अपने भाले से मानसिंह पर वार किया। मानसिंह ने होदे में नीचे झुक कर अपने को बचा लिया किन्तु उसका महावत मारा गया। इस हमले में मानसिंह के हाथी की सूंड पर लगी तलवार से चेतक का एक अगला पैर कट गया। प्रताप को संकट में देखकर बड़ी सादड़ी के झाला बीदा ने राजकीय छत्र स्वयं धारण कर युद्ध जारी रखा और प्रताप ने युद्ध को पहाड़ों की ओर मोड लिया। हल्दीघाटी से कुछ दूर बलीचा नामक स्थान पर घायल चेतक की मृत्यु हो गई, जहाँ उसका चबूतरा आज भी बना हुआ है। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की तरफ से झाला बीदा, मानसिंह सोनगरा, जयमल मेड़तिया का पुत्र रामदास, रामशाह और उसके तीन पुत्र (शालिवाहन, भवानीसिंह व प्रतापसिंह) वीरता का प्रदर्शन करते हुए मारे गए। सलूम्बर का रावत कृष्णदास चूड़ावत, घाणेराव का गोपालदास, भामाशाह, ताराचन्द आदि रणक्षेत्र में बचने वाले प्रमुख सरदार थे।

जब युद्ध पूर्ण गति पर था,तब प्रताप ने युद्ध स्थिति में परिवर्तन किया। युद्ध को पहाड़ों की ओर मोड़ दिया। मानसिंह ने मेवाड़ी सेना का पीछा नहीं किया। मुगलों द्वारा प्रताप की सेना का पीछा न करने के बदायूनी ने तीन कारण बताये हैं–

1. जून माह की झुलसाने वाली तेज धूप
2. मुगल सेना की अत्यधिक थकान से युद्ध करने क्षमता न रहना।
3. मुगलों को भय था कि प्रताप पहाड़ों में घात लगाए हुए है और उसके अचानक आक्रमण से अत्यधिक सैनिकों का जीवन खतरे में पड़ जाएगा।

इस तरह अकबर की इच्छानुसार वह न तो प्रताप को पकड़ सका अथवा मार सका और न ही मेवाड़ की सैन्य शक्ति का विनाश कर सका।अकबर का यह सैन्य अभियान असफल रहा तथा पासा महाराणा प्रताप के पक्ष में था। युद्ध के परिणाम से खिन्न अकबर ने मानसिंह और आसफ खां की कुछ दिनों के लिये ड्योढ़ी बंद कर दी अर्थात् उनको दरबार में सम्मिलित होने से वंचित कर दिया। शंहशाह अकबर की विशाल साधन सम्पन्न सेना का गर्व मेवाड़ी सेना ने ध्वस्त कर दिया।

जब राजस्थान के राजाओं में मुगलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उनकी अधीनता मानने की होड़ मची हुई थी, उस समय प्रताप द्वारा स्वतन्त्रता का मार्ग चुनना निसंदेह सराहनीय कदम था।

शाहबाज खां के अभियान– हल्दीघाटी युद्ध के बाद अकबर ने प्रताप को पूरी तरह से कुचलने के लिए मीरबख्शी शाहबाज खां को तीन बार प्रताप के विरूद्ध भेजा। 15 अक्टूबर 1577 ई. को शाहबाज खां को प्रथम बार मेवाड़ के लिए रवाना किया गया। प्रथम आक्रमण के समय शाहबाज खां ने केलवाड़ा गांव पर अधिकार कर कुम्भलगढ़ का घेरा डाला, फिर भी उसको लेने में सफलता नहीं मिली और कुछ समय बाद प्रताप ने पुनः अधिकार कर लिया।प्रताप राव अक्षयराज के पुत्र भाण सोनगरा को किलेदार नियुक्त कर अपने सैनिकों के साथ ईडर की तरफ निकल गया और चुलिया गांव में ठहरा। यहाँ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने पच्चीस लाख रूपये एवं बीस हजार अशर्फियां राणा को भेंट की। भामाशाह की सैनिक एवं प्रशासनिक क्षमता को देखकर प्रताप ने इसी समय रामा महासहाणी के स्थान पर उसे मेवाड़ का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया।

भामाशाह से आर्थिक सहायता प्राप्त हो जाने के बाद प्रताप ने सेना का पुनर्गठन किया और जुलाई 1582 ई. में अवसर देखकर दिवेर (राजसमंद) के दर्रे पर कायम मुगल थाने पर हमला किया। इस थाने पर अकबर के चाचा सुल्तान खां का नियन्त्रण था। संघर्ष के दौरान अमरसिंह ने अपना भाला इतनी शक्ति से मारा कि वह सुल्तान खां मुगल को बेधता हुआ उसके घोड़े के भी आर–पार हो गया। दिवेर की विजय के बाद इस पर्वतीय भाग पर प्रताप का अधिकार हो गया। कर्नल टॉड ने दिवेर के युद्ध को 'मेवाड़ के मेराथन' की संज्ञा दी है।

प्रताप के विरूद्ध अंतिम अभियान– अकबर ने 6 दिसम्बर 1584 ई. को जगन्नाथ कछवाहा (आमेर के राजा भारमल का छोटा पुत्र) को अजमेर का सूबेदार बनाकर मेवाड़ पर आक्रमण के लिए भेजा। जगन्नाथ कुछ भी विशेष नहीं कर पाया और निराश होकर

1585 ई. में मेवाड़ से चला गया। जगन्नाथ कछवाह का आक्रमण मेवाड़ पर प्रताप के समय अंतिम आक्रमण सिद्ध हुआ। अब अकबर को विश्वास हो गया कि महाराणा प्रताप को पकड़ पाना अथवा उससे अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार कराने का प्रयत्न केवल एक कल्पना मात्र है। साथ ही अकबर अब पश्चिमोत्तर समस्या में उलझ गया गया था। इस कारण प्रताप के विरुद्ध अभियान हमेशा के लिए बंद कर दिए गए।

धनुष की प्रत्यंचा खींचने के प्रयत्न में प्रताप घायल हो गया और उनका 19 जनवरी 1597 ई. को 57 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। चावंड से ढ़ाई किलोमीटर दूर बण्डोली गांव के निकट बहने वाले नाले के किनारे उनका दाह–संस्कार किया गया। दूरसा आढ़ा ने प्रताप के बारे में लिखा है :–

अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी।
गौ आड़ा गवड़ाय, जिको बहतो धुरवामी।।
नवरोजे नह गयो, नगौ आतसां नवल्ली।
नगौ झरोखा हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली।।

(जिसने कभी अपने घोड़ों को शाही सेना में भेज कर दाग नहीं लगवाया, जिसने अपनी पगड़ी किसी के आगे नहीं झुकाई, जो सदा शत्रुओं के प्रति व्यंग्य भरी कविताएं गाता था, जो समस्त भारत के भार की गाड़ी को बायें कन्धे से खींचने में समर्थ था, जो कभी नौरोज में नहीं गया, जो शाही डेरों में नही गया और जिस अकबर के झरोखे की प्रतिष्ठा विश्व भर में व्याप्त थी, वह उसके नीचे भी नहीं आया। ऐसा गहलोत (महाराणा प्रताप) विजय के साथ मृत्यु के पास चला गया।)

प्रताप को लगभग 12 वर्ष शांति और स्वाधीनता का उपयोग करने का अवसर मिला। इस अवसर का लाभ उठाकर उसने मेवाड़ के उत्तर–पश्चिम, उत्तर–पूर्व तथा मध्य भाग में फैले हुए मुगल थानों पर धावे बोलने प्रारम्भ कर दिये। शीघ्र ही उसने 36 स्थानों के मुगल थाने उठा दिये, जिनमें उदयपुर, मोही, गोगुन्दा, मांडल, पानरवा आदि प्रमुख थे। उदयपुर से प्राप्त 1588 ई. के एक लेख में प्रताप द्वारा त्रिवेदी सादुलनाथ को जहाजपुर के निकट मंडेर की जागीर प्रदान करने का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि प्रताप ने उस समय तक मेवाड़ के उत्तर–पूर्वी प्रदेश पर पुनः अधिकार कर लिया था और अपने विश्वसनीय अनुयायियों को जागीरें प्रदान कर पुनर्निर्माण के कार्य में व्यस्त था।1585 ई. के बाद उसने अपनी राजधानी चावण्ड के विकास पर पूरा ध्यान दिया और यहाँ अनेक महल व मंदिर बनवाए। जीवधर की रचना 'अमरसार' के अनुसार प्रताप ने ऐसा सुदृढ़ शासन स्थापित कर लिया था कि महिलाओं और बच्चों तक को किसी से भय नहीं रहा। आन्तरिक सुरक्षा भी लोगों को इतनी प्राप्त हो गई थी कि बिना अपराध के किसी को कोई दण्ड नहीं दिया जाता था। उसने शिक्षा प्रसार के भी प्रयत्न किए।

विद्वानों के संरक्षक के रूप में प्रताप– 1588 ई. के अंत तक प्रताप ने चित्तौड़, माण्डलगढ़ तथा अजमेर से उनको जोड़ने वाले अंतर्वर्ती क्षेत्रों के अतिरिक्त प्रायः सम्पूर्ण मेवाड़ पर अधिकार कर लिया। मुगल आक्रमण बंद होने के कारण प्रताप ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष चावंड में शांतिपूर्वक राज्य करते हुए बिताए। शांतिकाल में राजधानी चावंड ने बड़ी तरक्की की। यहाँ कलात्मक भवनों एवं मंदिरों का निर्माण हुआ। व्यापार–वाणिज्य, कला, साहित्य और संगीत को प्रोत्साहन मिलने लगा। प्रताप के संरक्षण में चावण्ड में रहते हुए चक्रपाणि मिश्र ने तीन संस्कृत ग्रंथ – राज्याभिषेक पद्धति, मुहुर्त्तमाला एवं विश्ववल्लभ लिखे। ये ग्रंथ क्रमशः गद्दीनशीनी की शास्त्रीय पद्धति, ज्योतिषशास्त्र और उद्यान विज्ञान के विषयों से सम्बन्धित है। प्रताप के राज्यकाल में भामाशाह के भाई ताराचंद की प्रेरणा से 1595 ई. में हेमरत्न सूरि द्वारा 'गोरा बादल कथा पद्मिनी चौपई' काव्य ग्रंथ की रचना की गई। सैनिकों में त्याग और बलिदान की भावना उत्पन्न करने के लिए चारण कवि रामा सांदू और माला सांदू प्रताप की सेना के साथ रहते थे। रामा सांदू ने प्रताप के शौर्य का गुणगान करते हुए लिखा है कि 'अकबर एक पक्षी के समान है जिसने अनन्त आकाश रुपी प्रताप की थाह पाने के लिए उड़ान भर ली, पर वह उसका पार नहीं पा रहा है। अंत में हार कर उसे अपनी हद में रहना पड़ा।' इसी काल में चावंड में प्रसिद्ध चित्रकार निसारदी (नासिरूद्दीन) हुआ।

महाराणा की चारित्रिक विशेषताएं

1.निहत्थे पर वार नहीं करना– उन्होंने कभी भी निहत्थे पर वार नहीं करने का प्रण ले रखा था। वे सदैव दो तलवार रखते थे– एक तलवार दुश्मन को देने के लिए भी रखते थे।

2. मेवाड का राजचिह्न सामाजिक समरसता प्रतीक है। एक तरफ क्षत्रिय व एक तरफ भील योद्धा, सर्व समाज समभाव का सूचक है। महाराणा प्रताप सभी के प्रिय थे, सब लोग उनके लिए प्राण देने के लिए तैयार रहते थे।

3. स्वतंत्रता प्रेमी– महाराणा प्रताप स्वाधीनता प्रेमी थे। अनेक कष्टों के बाद भी किसी भी कीमत पर अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए।

4. धर्म रक्षक व राजचिह्न सम्मान – धर्म रक्षक व राजचिह्न की सदैव रक्षा की। उनकी मान्यता थी, जो दृढ़ राखे धर्म को तिहि राखे करतार।

5. शील–स्त्री सम्मान – नारी सम्मान के लिए भारतीय परम्परा का उदाहरण प्रस्तुत किया। कुंवर अमरसिंह ने 1580 ई. में जब अचानक शेरपुर के मुगल शिविर पर आक्रमण कर सूबेदार अब्दुर्रहीम खानखाना के परिवार को बंदी बना लिया गया, तब प्रताप ने खानखाना की स्त्रियों एवं बच्चों को ससम्मान एवं सुरक्षित वापस लौटाने के आदेश भिजवाये।

6. प्रेरणा पुरूष– महाराणा प्रताप बाद में शिवाजी, छत्रसाल से लेकर अंग्रेजों के विरूद्ध स्वाधीनता संग्राम में स्वातंत्र्य योद्धाओं के प्रेरता बने।

7. उनकी विलक्षण सहयोगी प्रतिभा के कारण ही भामाशाह ने अपनी समस्त सम्पदा महाराणा के चरणों में समर्पित कर दी।

वीर दुर्गादास राठौड़ (1638–1718 ई.)

प्रारम्भिक जीवन – दुर्गादास का जन्म 1638 ई. में सालवा गांव में हुआ। वे जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की सेवा में रहने वाले आसकरण की तीसरी पत्नी की संतान थे। आसकरण को मारवाड़

में सालवा की जागीर मिली हुई थी और कालान्तर में मुहणौत नैणसी के बाद उसे मारवाड़ का प्रधानमंत्री भी नियुक्त किया गया था। अपनी पत्नी से प्रेम न रहने के कारण उसने पत्नी–पुत्र दोनों को अलग कर दिया। बालक दुर्गादास अपनी माता के साथ लूणावे गांव में रहकर खेती–बाड़ी द्वारा गुजारा चलाने लगा। 1655 ई. में आपसी कहा–सुनी के बाद उसने अपने खेत से होकर सांडनियाँ (मादा ऊँट) ले जाने पर राजकीय चरवाहे को मार डाला। खबर मिलने पर महाराजा ने आसकरण से सफाई मांगी। आसकरण ने कहा कि उसके सब बेटे राज्य की सेवा में हैं और गांव में कोई बेटा नहीं है। तब महाराजा ने दुर्गादास को बुलाकर सारी बात पूछी। दुर्गादास ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि उक्त चरवाहे की लापरवाही के कारण न केवल किसानों की फसल नष्ट हो रही थी अपितु उसने आपके दुर्ग को भी अपशब्दों के साथ 'बिना छज्जे का धोळा ढूंढा' (बिना छत का सफेद खण्डहर) कहा। इस कारण मैंने उसकी हत्या कर दी। पूरी जानकारी प्राप्त कर महाराजा ने आसकरण से जब यह पूछा कि 'तुम तो कहते थे गांव में मेरा कोई बेटा नहीं है' तो आसकरण ने कहा कि 'कपूत को बेटों में नहीं गिनते।' महाराजा जसवंतसिंह बोले 'यह आपका भ्रम है। यही कभी डगमगाते हुए मारवाड़ को कंधा देगा' और इसके बाद दुर्गादास को अपनी सेवा में रख लिया।

1667 ई. में दुर्गादास को 12,000 रुपये की वार्षिक आय वाले पांच गांव झांवर, समदड़ी, जगीसा कोठड़ी, आम्बा–रो–वाड़ो और अमरसर प्रदान किए गये। कालान्तर में जसवंतसिंह द्वारा मारवाड़ के रायमल बालो, जवण देसर और बांभसेण गांवों के साथ रोहतक परगने का लुणोद गांव भी दुर्गादास को जागीर के रूप में दिया गया।

जोधपुर पर शाही नियन्त्रण स्थापित होना– महाराजा जसवंतसिंह और मुगल बादशाह औरंगजेब के बीच प्रायः विरोध की स्थिति बनी रही। इस कारण औरंगजेब ने जसवंतसिंह को मारवाड़ से बहुत दूर जमरूद (अफगानिस्तान) के थाने पर नियुक्त कर दिया। 1678 ई. में जमरूद में जसवंतसिंह की मृत्यु की खबर सुनते ही औरंगजेब के मुँह से निकल पड़ा – 'दरवाजा ए कुफ्र शिकस्त' (आज मजहब विरोध का दरवाजा टूट गया)। पर जब महल में बेगम ने यह हाल सुना तो कहा –आज शोक का दिन है कि बादशाहत का ऐसा स्तम्भ टूट गया। जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने जोधपुर को खालसा घोषित कर ताहिर खां को फौजदार, खिदमतगुजार खां को किलेदार, शेर अनवर को अमीन और अब्दुर्रहीम को कोतवाल बनाकर प्रबन्ध के लिए नियुक्त कर दिया।

मारवाड़ पर पूरी तरह नियन्त्रण स्थापित हो जाने के बाद खानजहां बहादुर मन्दिरों के तोड़ने से एकत्रित हुई मूर्तियों को गाड़ियों में भरवाकर अप्रैल 1679 ई. में दिल्ली पहुँच गया। बादशाह ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और मूर्तियां दरबार के जलूखाने (आंगन) तथा जुमा मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे डाली जाने की आज्ञा दी ताकि ये लोगों के पैरों के नीचे कुचली जा सकें।

26 मई 1679 ई. को औरंगजेब ने इन्द्रसिंह

देना स्वीकार कर लिया। इन्द्रसिंह न तो जोधपुर का प्रबन्ध कर पाया और न वहाँ होने वाले उपद्रवों को शांत कर पाया जिसके कारण बादशाह ने लगभग दो माह बाद ही उसे वापस बुला लिया।

जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद राठौड़ सरदार उनकी दोनों गर्भवती रानियों को लेकर जमरूद से रवाना हुए किन्तु शाही परवाना न होने के कारण अटक नदी पर अफसरों ने उन्हें रोक लिया। इन अफसरों से लड़ाई कर राठौड़ दल ने अटक नदी को पार किया। वहीं दोनों रानियों ने 19 फरवरी 1679 ई. को आधे घण्टे के अन्तराल पर क्रमशः अजीतसिंह और दलथंभन नामक पुत्रों को जन्म दिया। जोधपुर की ख्यात के अनुसार इन कुंवरों के जन्म का समाचार मिलने पर बादशाह ने व्यंग्य से मुस्कराते हुए कहा कि ''बंदा कुछ सोचता है और खुदा उससे ठीक उल्टा करता है।'' शाही आज्ञा ने इन बालकों को वहाँ से दिल्ली ले जाया गया।

दिल्ली में दोनों कुंवरों व रानियों को किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की हवेली में ठहराया गया। बादशाह की नियत साफ न देखकर राठौड़ रणछोड़दास, भाटी रघुनाथ, राठौड़ रूपसिंह, राठौड़ दुर्गादास आदि सरदारों ने फैसला किया कि यहाँ रहकर मरने में कोई लाभ नहीं, यदि जिंदा रहे तो संघर्ष कर जोधपुर पर अधिकार कर लेंगे। इसलिए प्रमुख–प्रमुख राठौड़ सरदारों को दिल्ली से जो

जब राठौड़ सरदार एक–एक कर दिल्ली से विदाई लेने लगे तो औरंगजेब ने इनकी शक्ति कम होती देख राजपरिवार के प्रति अधिक कठोर नीति अपनानी प्रारम्भ कर दी। उसने कोतवाल फौलाद खां को आदेश दिया कि राठौड़ रानियों और राजकुमारों को रूपसिंह की हवेली से हटाकर नूरगढ़ पहुँचा दिया जाए और अगर राठौड़ इससे आनाकानी करें तो उन्हें दण्ड दिया जाये। सौभाग्य से इसके एक दिन पहले ही दुर्गादास और चांपावत सोनिंग अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ के लिए निकल गए थे। बादशाह को जब राजकुमारों के भागने की खबर लगी तो उसने पीछा करने का आदेश दिया। दुर्गादास ने मार्ग में शाही सेना को रोक दिया जिसके कारण अजीतसिंह सुरक्षित जोधपुर पहुँचने में सफल रहा। इधर बादशाह ने एक जाली अजीतसिंह का नाम मोहम्मदीराज रखकर अपनी पुत्री जेबुन्निसा को परवरिश के लिए सौंप दिया।

अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ के सरदार जोधपुर पहुँचे किन्तु जोधपुर पर शाही अधिकार हो जाने के कारण वे अजीतसिंह की सुरक्षा को लेकर चिंतित थे। इस कारण बालक अजीतसिंह को उनकी विमाता देवड़ाजी की सलाह पर कालिंद्री (सिरोही) भेज दिया गया। यहाँ उसे पुष्करणा ब्राह्मण जयदेव के संरक्षण में रखा गया और सुरक्षा के लिए गुप्त रूप से मुकुन्ददास खींची को नियुक्त कर दिया गया।

महाराजा जसवंतसिंह की सबसे बड़ी रानी जसवंतदे बूंदी के राव छत्रसाल की पुत्री थी। उसकी सौतेली बहन काननकुमारी का विवाह महाराणा राजसिंह के साथ हुआ था। इस कारण दुर्गादास ने काननकुमारी के माध्यम से उनके बहनोई महाराणा राजसिंह के पास अजीतसिंह को सुरक्षा देने की प्रार्थना भिजवाई। पूरे मामले से मेवाड़ की सुरक्षा भी जुड़ी हुई थी। इस

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु की खबर मिलने के बाद अजीतसिंह ने जोधपुर के नायब फौजदार जाफरकुली को भगाकर अपने पैतृक राज्य पर कब्जा कर लिया। यह आक्रमण इतना जल्दी हुआ कि किले में मौजूद 'कुछ मुसलमानों को जान बचाने के लिए हिन्दुओं का वेश बनाकर भागना पड़ा।'

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा गया है कि सांभर विजय (3 अक्टूबर 1708 ई.) के बाद वहाँ डेरे होने पर दुर्गादास ने अपनी सेना सहित अलग डेरा किया। महाराजा ने उसे मिसल (सरदारों की पंक्ति) में डेरा करने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि मेरी तो उमर अब थोड़ी रह गई है, मेरे पीछे के लोग मिसल में डेरा करेंगे। अजीतसिंह के व्यवहार से आहत दुर्गादास मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय की सेवा में चला गया और वहाँ से बुलाने पर भी जोधपुर नहीं लौटा।

अजीतसिंह ने दुर्गादास की अभिरक्षा में अकबर के बच्चों की सुरक्षा करने वाले रघुनाथ सांचोरा को सार्वजनिक रूप से कोड़े मारकर अपमानित किया और काल–कोठरी में भूखा–प्यासा रखकर मरने के लिए बाध्य कर दिया (अक्टूबर 1707 ई.)। जुलाई 1708 ई. में अपने महामंत्री मुकुन्ददास चांपा

हूण का खजाना मिला। शिवाजी ने इस धन से

मुगल–मराठा संधि सम्पन्न हो गई जिसके अनुसार औरंगजेब ने शिवाजी को स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर 'राजा' की उपाधि को मान्यता दे दी। संधि के बावजूद औरंगजेब शिवाजी के विरुद्ध चाल चलने से बाज नहीं आया। इस कारण 1670 ई. में शिवाजी ने सूरत को पुनः लूट लिया और अपने खोये हुए प्रदेशों पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया।

शिवाजी ने बनारस के गंगाभट्ट नामक ब्राह्मण को बुलाकर जून 1674 ई. को राजधानी रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक करवाया और 'छत्रपति', 'हिन्दू धर्मोद्धारक', 'गौ ब्राह्मण प्रतिपालक' आदि उपाधियाँ धारण की।

शिवाजी के अंतिम दिन चिंता में बीते। एक तरफ तो वे अपने पुत्र शम्भाजी के मुगलों की शरण में जाने से दुःखी थे, दूसरी तरफ उनकी पत्नी सोयराबाई अपने पुत्र राजाराम को उत्तराधिकारी बनाने के लिए षड्यंत्र रच रही थी। इन परिस्थितियों में अप्रैल 1680 ई. में शिवाजी की मृत्यु हो गई। शिवाजी ने देश के लोगों में नवजीवन का संचार करने तथा स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना के उद्देश्य से आजीवन संघर्षरत रहे। एक बड़ी सीमा तक वे अपने उद्देश्य में सफल रहे। सर जदूनाथ सरकार के अनुसार शिवाजी 'हिन्दू प्रजाति का अंतिम प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति और राष्ट्र निर्माता शासक' था। जिस समय वह महाराष्ट्र के रंगमंच पर आये, उस समय मराठे विदेशी शासकों के

दी। दक्खन में चौथ और सरदेशमुखी की वसूली के अधिकार प्राप्त करना बालाजी विश्वनाथ की बहुत बड़ी सफलता थी। उसे मराठा साम्राज्य का 'द्वितीय संस्थापक' (संस्थापक – शिवाजी) कहा जाता है।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद उसके बड़े पुत्र बाजीराव (1720–40 ई.) को पेशवा पद पर नियुक्त किया गया। इस समय उसकी आयु मात्र 20 वर्ष थी। मुगल साम्राज्य की शोचनीय दशा का लाभ उठाकर वह उसके अधिक से अधिक प्रदेशों को छीन लेना चाहता था। उसने अपनी तर्कपूर्ण व्याख्या द्वारा यह कहते हुए शाहू का समर्थन हासिल कर लिया कि ''हमारे लिए यही समय है कि हम विदेशियों को देश से निकालकर कीर्ति प्राप्त कर लें। हमें सूखे वृक्ष की जड़ों पर प्रहार करना चाहिए, शाखाएँ तो अपने आप गिर जायेंगी।'' पेशवा की योजना से प्रभावित होकर शाहू ने कहा ''तुम मराठा पताका को हिमालय की चोटी पर फहरा दोगे। तुम वास्तव में योग्य पिता के योग्य पुत्र हो।''

अपनी नीति के अनुसार बाजीराव ने नर्मदा पार कर 1724 ई. में मालवा जीत लिया। शाही सेवा में मौजूद जयपुर का शासक सवाई जयसिंह मराठों से सहानुभूति रखने के कारण शीघ्र ही पेशवा का मित्र बन गया। इस कारण पेशवा को बहुत कम विरोध का सामना करना पड़ा। पेशवा को सबसे जटिल समस्या का सामना मुगल साम्राज्य के सबसे शक्तिशाली सरदार निजाम–उल–मुल्क के साथ सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में करना पड़ा। निजाम स्वयं को दक्खन का न्यायोचित शासक मानता था। इस क्षेत्र में मराठा अभियानों के कारण वह उन्हें अपना सबसे बड़ा शत्रु समझने लगा। इस कारण उसने 1719 ई. की संधि का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया और शाहू के स्थान पर उसके विरोधी शम्भाजी को मराठा साम्राज्य के मुखिया के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। मार्च 1728 ई. को औरंगाबाद के पास पालखेड़ नामक स्थान पर पेशवा ने निजाम की सेनाओं को पराजित कर उसे मुंगी शिवगांव की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया। इस संधि के अनुसार –

1. निजाम ने शम्भाजी की सुरक्षा की जिम्मेदारी छोड़कर उसे पन्हाला भेजना स्वीकार कर लिया।

2. छीने गये मराठा प्रदेश तथा मराठा कैदियों को छोड़ देने का निर्णय लिया गया।

3. 1719 ई. की संधि के अनुसार शाहू के चौथ तथा सरदेशमुखी कर की वसूली के अधिकार को मान लिया।

कुछ समय बाद चौथ और सरदेशमुखी के बदले पेशवा ने प्रतिज्ञा कर ली कि वह निजाम के प्रदेशों पर आक्रमण नहीं करेगा और निजाम ने मराठों के उत्तरी भारत पर आक्रमण में तटस्थ रहना स्वीकार कर लिया। अब पेशवा ने उत्तर भारत पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए 1728 ई. में मालवा और बुन्देलखण्ड के मुगल प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। मार्च 1737 ई. में अवध के सूबेदार सआदतखाँ ने मराठा सेनापति मल्हारराव होल्कर को पराजित किया और इस विजय की डींग मारते हुए दिल्ली में सूचना भेजी कि उसने मराठों को चम्बल के पार खदेड़ दिया। बाजीराव इस विजय का खण्डन करने के लिए 14 दिन का सफर मात्र दो दिन में तय कर दिल्ली पर टूट पड़ा। इस आक्रमण से भयभीत मुगल सम्राट को बाजीराव ने संदेश भेजा कि उसके अभियान का उद्देश्य कुछ प्राप्त करना नहीं अपितु सिर्फ यह दिखाना है कि वह अभी तक जिन्दा है। दिल्ली से लौटने के बाद पेशवा ने निजाम को पराजित कर 17 जनवरी 1738 ई. को दोराहा सराय की संधि करने के लिए बाध्य किया। इस संधि के अनुसार उसने सम्पूर्ण मालवा तथा नर्बदा से लेकर चम्बल तक के प्रदेश को बाजीराव के आधिपत्य में छोड़ दिया। 1740 ई. में बाजीराव ने निजाम–उल–मुल्क के द्वितीय पुत्र नासिरजंग को परास्त कर मुंगी शिवगांव की संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इसके अनुसार नासिरजंग ने हांडिया और खरगांव के जिले मराठों को सौंप दिये। 8 मई 1740 ई. को नर्मदा नदी के किनारे रावर नामक स्थान पर अचानक बाजीराव की मृत्यु हो गई।

अध्ययन बिन्दु

- रामप्रसाद : 'रामप्रसाद' महाराणा प्रताप के प्रसिद्ध हाथी का नाम था। अकबर इस अत्यन्त कुशल और प्रशिक्षित हाथी को प्राप्त करने का इच्छुक था। हल्दीघाटी के युद्ध में इस पर अधिकार करने के बाद बदायूंनी के साथ इसे अकबर के पास फतेहपुर सीकरी भेजा गया। अकबर ने रामप्रसाद का नाम बदलकर 'पीरप्रसाद' रख दिया।
- हल्दीघाटी : हल्दीघाटी राजसमंद जिले में स्थित प्रसिद्ध युद्ध का मैदान है। 18 जून 1576 ई. को महाराणा प्रताप और मानसिंह कछवाह (अकबर का सेनापति) के मध्य लड़े गए युद्ध को कर्नल जेम्स टॉड ने हल्दीघाटी का युद्ध व हल्दीघाटी को 'मेवाड़ की थर्मोपली' कहा है। अकबरनामा के लेखक अबुल फजल ने इस युद्ध को 'खमनौर का युद्ध' तो 'मुन्तखब–उल–तवारीख' के लेखक अब्दुल कादिर बदायूंनी ने 'गोगुन्दा का युद्ध' कहा है। बदायूंनी ने अपने उक्त ग्रंथ में युद्ध का आंखों देखा वर्णन किया है।
- फारस के शासक दारा द्वारा यूनान पर आक्रमण किए जाने पर मेराथन के युद्ध (490 ई.पू.) में यूनानी सेना ने फारसी सेना को पराजित कर खदेड़ दिया। इस पराजय का बदला लेने के लिए दारा के उत्तराधिकारी जेरेक्सीज ने 480 ई.पू. में यूनान पर आक्रमण किया। थर्मोपली के युद्ध में लियोनिडास अपने देश की रक्षा करता हुआ मारा गया और फारसी सेनाएँ विजयी रही। कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि ''राजपूताने में छोटे से छोटा राज्य भी ऐसा नहीं है, जहाँ लियोनिडास जैसा वीर और थर्मोपली जैसा युद्ध का मैदान न हो।''
- निसारदी : महाराणा प्रताप के संरक्षण में उनकी संकटकालीन राजधानी चावण्ड में रहने वाला मुस्लिम चित्रकार। 1605 ई. में महाराजा अमरसिंह के काल में उसके द्वारा बनाये गए 'रागमाला' चित्र काफी प्रसिद्ध

हुए। निसारदी की चित्रकला चावंड शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. यह किसने कहा था कि ''हमें सूखे वृक्ष की जड़ों पर प्रहार करना चाहिए, शाखाएँ तो अपने आप गिर जाएँगी''?
   (अ) शिवाजी (ब) शाहू
   (स) बालाजी विश्वनाथ (द) बाजीराव प्रथम
2. इनमें से कौनसी एक उपाधि बप्पा रावल ने धारण नहीं की थी?
   (अ) हिन्दू सूर्य (ब) राजगुरु
   (स) चक्कवै (द) हिन्दू सुरत्राण
3. पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गौरी के बीच युद्ध किस स्थान पर लड़े गए?
   (अ) तराइन (ब) पानीपत
   (स) खानवा (द) हल्दीघाटी
4. रणथम्भौर पर अलाउद्दीन खिलजी ने किस वर्ष अधिकार किया?
   (अ) 1299 ई. (ब) 1300 ई.
   (स) 1301 ई. (द) 1303 ई.
5. मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण का कारण था?
   (अ) अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा
   (ब) मेवाड़ की बढ़ती हुई शक्ति
   (स) चित्तौड़ का भौगोलिक एवं सामरिक महत्त्व
   (द) पद्मिनी को प्राप्त करने की लालसा
6. कौनसा राजस्थानी शासक अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है?
   (अ) महाराणा सांगा (ब) महाराणा कुम्भा
   (स) महाराणा प्रताप (द) पृथ्वीराज चौहान
7. महाराणा सांगा ने बाबर की सेना को किस स्थान पर पराजित किया?
   (अ) खानवा (ब) बयाना
   (स) बाड़ी (द) खातोली
8. दुर्गादास राठौड़ ने राजस्थान की किस रियासत की रक्षा के लिए औरंगजेब से लम्बे समय तक संघर्ष किया?
   (अ) आमेर (ब) मारवाड़
   (स) मेवाड़ (द) कोटा

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. महाराणा प्रताप को समझाने के लिए अकबर द्वारा किन–किन दरबारियों को भेजा गया?
2. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में चित्तौड़ के विजय स्तम्भ का क्या महत्त्व है?
3. शिवाजी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
4. हल्दीघाटी का युद्ध कब और किनके मध्य लड़ा गया?
5. मारवाड़ के राव चन्द्रसेन को 'प्रताप का अग्रगामी' क्यों कहा जाता है?
6. चम्पानेर की संधि किन–किन के मध्य हुई?
7. महमूद गजनवी का अंतिम भारतीय अभियान कब और किस शक्ति के विरुद्ध हुआ?
8. दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाला अंतिम हिन्दू सम्राट कौन था?
9. हम्मीर देव चौहान की जानकारी के कोई चार साहित्यिक स्त्रोतों का नाम लिखिए।
10. 'हिन्दूपत' किस राजस्थानी शासक को क्या जाता है और क्यों?
11. मारवाड़ की संकटकालीन राजधानी किसे कहा जाता है?
12. किस मुस्लिम इतिहासकार ने हल्दीघाटी के युद्ध में अकबर की तरफ से भाग लिया था?
13. कौन–कौन सी दो उपाधियाँ महाराणा कुम्भा के महान् संगीतज्ञाता होने की प्रमाण हैं?
14. महाराणा सांगा को 'एक सैनिक का भग्नावशेष' क्यों कहा गया है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत पर अरबों के आक्रमण के क्या कारण थे?
2. अरबों की सिंध विजय के सांस्कृतिक परिणामों का उल्लेख कीजिए।
3. नागभट्ट प्रथम के मुस्लिम प्रतिरोध का वर्णन कीजिए।
4. मुहम्मद गौरी के विरुद्ध पृथ्वीराज चौहान की असफलता के क्या कारण थे?
5. मारवाड़ के इतिहास में राव चन्द्रसेन को समुचित महत्त्व क्यों नहीं मिल पाया?
6. आप कैसे कह सकते है कि महाराणा प्रताप धार्मिक रूप से सहिष्णु शासक था?
7. खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा की पराजय के क्या कारण थे?
8. औरंगजेब के विरुद्ध राठौड़–सिसोदिया गठबंधन का मूल्यांकन कीजिए।
9. पुरन्दर की संधि की प्रमुख शर्तों का उल्लेख कीजिए।
10. महाराणा सांगा के समय मेवाड़ और दिल्ली सल्तनत के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।
11. शिवाजी की धार्मिक नीति का मूल्यांकन कीजिए।
12. महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन में क्या–क्या समानता व

असमानता थी?

13. अगर हम्मीर चौहान के स्थान पर आप होते तो अलाउद्दीन खिलजी के विद्रोहियों को लौटाने के प्रति क्या निर्णय लेते और क्यों?
14. एक विजेता के रूप में बप्पा रावल की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाराणा कुम्भा की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।
2. महाराणा सांगा व बाबर के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।
3. दुर्गादास राठौड़ के जीवन चरित्र व उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
4. चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कारणों का उल्लेख करते हुए पद्मिनी की कहानी अपने शब्दों में लिखिए।
5. महाराणा प्रताप द्वारा किए गये मुगल प्रतिरोध का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तरतालिका – 1. द 2. द 3. अ 4. स 5. द 6. ब 7. ब 8. ब

....